S
294.167
Sa77

Library IIAS, Shimla
S 294.167 Sa 77
00023836

Acc. No. 23856
Date 20.5.68
1182

सर्वतोभद्रचक्र

(अर्घकाण्ड)

अथाऽर्घकाण्डं वक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मयामले ।
एकाशीतिपदे चक्रे ग्रहवेधाच्छुभाशुभम् ॥

—:o:—

व्याख्याऽर्घकाण्डे नृगिरा स्वभावसरलाभिधा ।
मोतीलालेन सुधिया नागरेण वितन्यते ॥

अब हम अर्घकाण्ड अर्थात् व्यापारी वस्तुओं की तेजी-मंदी जानने के प्रकार का वर्णन करेंगे, जिसे 'ब्रह्मयामल' नामक ग्रन्थ में इक्यासी कोष्ठकवाले (सर्वतोभद्र) चक्र में ग्रहों के वेध के द्वारा बतलाया गया है।

समीक्षा—इस प्रकरण से पहिले ग्रन्थकर्ता नरपति आचार्य ने अपने नरपतिजयचर्या ग्रन्थ के पांचवें ज्यौतिषाङ्ग में 'जलयोग' नाम का एक प्रकरण लिखा है। जिस में किस समय, किसस्थान पर कितनी वृष्टि होगी या वर्षा होगी ही नहीं? इत्यादि वर्षाज्ञान का विषय है। यह विषय भी ग्रन्थकार ने बहुत सुंदर लिखा है—देखने योग्य है। इसी से इस प्रकरण के आरंभ में ग्रन्थकार ने 'अथ' शब्द का प्रयोग किया है। और उक्त वचन में सर्वतोभद्र-

चक्र का उपयोग केवल ग्रहों के वेध के लिये ही किया गया है। अत एव सर्वतोभद्रचक्र के वेधसंबंधी नियमसूत्र ही काम में लाये जाँय। शेष विचार अर्घकाण्ड के नियमानुसार करना चाहिये।

चक्र के निर्माण का सविस्तर विधान।

ऊर्द्धगा दश विन्यस्य तिर्यग्रेखास्तथा दश।
एकाशीतिपदं चक्रं जायते नात्र संशयः॥

दस रेखा खड़ी और दस रेखा आड़ी खींचने से इक्यासी कोष्ठक का संशयरहित चक्र बन जाता है। इस प्रकार बनाये हुए इक्यासी कोष्ठक समचतुष्कोण होंगे। और वे कोष्ठक इक्यासी संख्या में इस लिये रखे गये हैं कि, उन कोष्ठकों में लिखे जानेवाले १ स्वर २ नक्षत्र ३ वर्ण ४ राशि और ५ तिथियों की संख्या भी इक्यासी ही है।

अकारादिस्वराः कोष्ठेष्वैश्यादौ विदिशि क्रमात्।
सृष्टिमार्गेण दातव्याः षोडशैवं चतुर्भ्रमम्॥

ईशान आदि चारों विदिशाओं में अकारादि–विसर्गपर्यन्त सोलह स्वरों को क्रम से चार आवृत्तियों में सृष्टिमार्ग अर्थात् प्रदक्षिणक्रम से लिखना चाहिये।

समीक्षा—उक्त वाक्य में 'अकारादि-विसर्ग-पर्यन्त सोलह स्वर' इसलिये कहे गये हैं कि, नरपतिजयचर्योक्त अन्य चक्रों में कहीं कहीं कुछ कम स्वरों का भी जो उपयोग किया गया है, वह इस चक्र में न होने पावे। विदिशाओं के सोलह कोष्ठकों की पूर्ति के लिये 'षोडश' शब्द दिया गया है। 'किन कोष्ठकों में अकारादि सोलह स्वर लिखे जांय?' इस शंका की निवृत्ति और उन्हीं

सोलह कोष्ठकों के स्थानों का परिचय देने के लिये 'विदिशि' पद लिखा गया है। 'कहां से अकारादि सोलह स्वरों का लिखना आरंभ किया जाय ?' इस प्रश्न के उत्तर में 'ऐश्यादौ' यह शब्द दिया गया है। ईशान, आग्नेय, नैर्ऋत्य तथा वायव्य; इन चारों विदिशाओं में कोई गड़बड़ी न होने पावे; इस अभिप्राय से 'क्रमात्' यह पद लिखा है। और किसी भी तरह विपरीतक्रम न हो जाय; इसके लिये 'सृष्टिमार्गेण' यह शब्द व्यवहृत किया गया है। उकारादि स्वरों के कोष्ठकों का स्थान बतलाने के लिये 'चतुर्भ्रमम्' यह दानक्रियाविशेषण लिखा गया है। अर्थात् चार भ्रमण (आवृत्तियां) जिस क्रिया में जिस तरह हो सकें, उस तरह अकारादि सोलह स्वरों को चार आवृत्तियों में ईशान आदि चारों विदिशाओं में लिखा जाय। भावार्थ यह है कि, ईशानादि चारों विदिशाओं में क्रम से सृष्टिमार्ग के द्वारा अकारादि चार स्वर पहिले भ्रमण में, उकारादि चार स्वर दूसरे भ्रमण में, ऋकारादि चार स्वर तीसरे भ्रमण में और ओकारादि चार स्वर चौथे भ्रमण में लिखे जांय। दूसरे, तीसरे और चौथे भ्रमण में विदिशाओं का ज्ञान कर्णगति से होता है। जैसा कि, 'समरसार' नामक ग्रन्थ में—"अथैशात् कर्णास्तोय १६ स्वरान्" इस वचन के द्वारा कहा गया है।

कृत्तिकादीनि धिष्ण्यानि पूर्वाशादौ लिखेत्ततः।
सप्त सप्त क्रमादेतान्यष्टाविंशतिसङ्ख्यया॥

अकारादि विसर्गपर्यन्त सोलह स्वरों को ईशान आदि चारों विदिशाओं में यथास्थान लिखने के बाद, पूर्व आदि चारों दिशाओं में क्रम से कृत्तिकादि सात सात नक्षत्र अट्ठाईस २८ संख्या में लिखे।

समीक्षा—यद्यपि सत्ताईस नक्षत्र ही सर्वत्र प्रसिद्ध और परिगणित हैं, तथापि यहां पर 'अभिजित्' नक्षत्र को साथ में ले लेने से अट्ठाईस संख्या पूरी हो जाती है। उत्तराषाढा नक्षत्र का चौथा चरण और श्रवण नक्षत्र का आरंभ वाला पन्द्रहवां भाग 'अभिजित्' कहा व माना जाता है। अतएव इस चक्र में 'अभिजित्' नक्षत्र को उत्तराषाढा और श्रवण नक्षत्र के मध्य में स्थान दिया गया है। ऐसी दशा में, इस शंका को कोई स्थान ही नहीं रह जाता कि, नक्षत्र तो सत्ताईस ही होते हैं, और चारों दिशाओं में सात सात नक्षत्र किस प्रकार अट्ठाईस संख्या में लिखे जा सकते हैं ?'

हां, यहां पर एक शंका उठती है—जबकि, ज्योतिश्शास्त्र में नक्षत्रों का आरंभ अश्विनी से किया गया है, तब इस चक्र में कृत्तिका से क्यों किया गया है ? इस शंका का उचित समाधान यह है कि, स्वरोदयशास्त्र में ग्रहों के वेध के द्वारा शुभाशुभ फलकथन के उपयुक्त 'शतपदचक्र' 'नवांश चक्र' आदि कितने ही चक्र जो पृथक् लिखे गये थे; उन सब का इस चक्र में बड़ी खूबी के साथ एक ही जगह समावेश कर दिया गया है तथा उन चक्रों का आरंभ भी कृत्तिका से ही किया गया है; इसी से इस चक्र में भी कृत्तिका से ही आरंभ किया गया है। और दूसरी बात यह भी है कि, स्वरशास्त्र में अ-इ-उ-ए-ओ; इन पाँच स्वरों की मुख्यता है। अतएव 'शतपदचक्र' में कृत्तिका के चार चरण तथा रोहिणी के प्रथम चरण में इन पांच स्वरों को स्थान मिला है। इन स्वरों के बिना किसी भी वर्ण का उच्चारण नहीं हो सकता; इसी से आरंभ में इन पाँच स्वरों की मुख्यता दिखाकर, रोहिणी के द्वितीय चरण से लेकर भरणी के चतुर्थ चरण पर्यन्त इन पाँचों स्वरों से युक्त

वर्णों का विन्यास किया है; इस कारण भी इस चक्र में कृत्तिकादि नक्षत्रों को आरंभ में स्थान दिया गया है।

अ व क ह डा दिशि प्राच्यां मटपरता दक्षिणे देयाः ।
नयभजखा वारुण्यां गसदचलाश्चोत्तरे वर्णाः ॥

जिस तरह इस चक्र की प्रथम पंक्ति में सात सात नक्षत्रों को एक एक विदिशा के एक एक स्वर के मध्य में सात सात कोष्ठकों में लिखा गया है, वैसे ही दूसरे भ्रमण में प्रत्येक दिशा में पांच पांच वर्णों को लिखने के लिये, नक्षत्रों के नीचे और कोणगत दोनों स्वरों के मध्य-भाग के पांच पांच कोष्ठकों में, क्रम से पूर्वादि चारों दिशाओं में अ व क ह ड़, मट प र त, न य भ ज ख और ग स द च ल, इन पांच पांच वर्णों को लिखे।

समीक्षा—इस चक्र में अकार को दो कोष्ठकों में जो स्थान दिया गया है, उसका प्रयोजन यह है कि, प्रथम अकार स्वररूप से और द्वितीय अकार वर्ण--साहचर्य से वर्णरूप से लिखा गया है। इतना ही नहीं; किन्तु द्वितीय अकार शतपदचक्र में लिखे हुए कृत्तिका के चार चरण और रोहिणी के प्रथम चरण में स्थित अ इ उ ए ओ; इन पांचों वर्णों का प्रतिनिधि स्वरूप है। इस द्वितीय अकार को किसी ग्रह का वेध होने पर, इ उ ए ओ; इन वर्णों को भी वेध हो जायगा; यह भी एक ध्यान में रखने की बात है। और इस द्वितीय भ्रमण मे वे ही वर्ण लिखे गये हैं जो प्रथम पंक्ति के नक्षत्रों में हैं।

त्रयस्त्रयो वृषाद्याश्च लेख्याः प्राच्यादितः क्रमात् ।

शेषकोष्ठेषु नन्दाद्यं सवारं तिथिपञ्चकम् ॥

तीसरे भ्रमण में क्रम से पूर्वादि चारों दिशाओं में वृष आदि तीन तीन राशियां वर्णों के नीचे और कोणगत दोनों स्वरों के मध्यवर्ती कोष्ठकों में लिखे।

समीक्षा—इस चक्र में कृत्तिकादि नक्षत्रों को प्रथम पंक्ति में लिखा गया है; इस लिये पूर्व दिशा की प्रथम पंक्ति के कृत्तिकादि आश्लेषापर्यन्त सात नक्षत्रों की वृषादि तीन राशियां पूव दिशा में, दक्षिण दिशा की प्रथम पंक्ति में लिखे गये मघादि—विशाखान्त सात नक्षत्रों की सिंहादि तीन राशियां दक्षिण दिशा में, पश्चिम दिशावाली प्रथम पंक्ति में लिखे हुए अनुराधादि—श्रवण-पर्यन्त सात नक्षत्रों की वृश्चिकादि तीन राशियां पश्चिम दिशा में और उत्तर दिशा की प्रथम पंक्ति में लिखे गये धनिष्ठादि भरणीपर्यन्त सात नक्षत्रों की कुम्भादि तीन राशियां उत्तर दिशा में लिखना उचित एवं युक्तिसङ्गत है।

चौथे भ्रमण में जो पांच कोष्ठक बचे हुए हैं, उनमें क्रम से पूर्वादि चारों दिशाओं और मध्य के कोष्ठकों में रवि आदि वारों के सहित नन्दा आदि पांचों तिथियों को लिखे। पूर्व दिशा में नन्दा १।६।११ दक्षिण दिशा में भद्रा २।७।१२ पश्चिम दिशा में जया ३।८।१३ उत्तर दिशा में रिक्ता ४।९।१४ और मध्यकोष्ठक में पूर्णा ५।१०।१५।३० इन तिथियों को लिखना चाहिये।

यहां पर यह शंका स्वयमेव उत्पन्न हो जाती है कि नन्दा आदि तिथियां भी पांच हैं और चक्र में शेष कोष्ठक भी पांच ही हैं, फिर सात वार इन पांच कोष्ठकों में कहां कहां लिखे जांय? इस शंका का समाधान ग्रन्थकार ने स्वयं आगे की कारिका में इस प्रकार किया है कि:—

भौमादित्यौ च नन्दायां भद्रायां बुधशीतगू।
जयायाश्च गुरुः प्रोक्तो रिक्तायां भार्गवस्तथा॥
पूर्णायां शनिवारश्च लेख्यश्चक्रेऽत्र निश्चितम्।
इत्येष सर्वतोभद्रविस्तारः कीर्तितो मया॥

चक्र में नन्दा के साथ सूर्य और मंगल, भद्रा के साथ चन्द्र और बुध, जया के साथ गुरु; रिक्ता के साथ शुक्र और पूर्णा तिथि के साथ शनिवार को लिखना चाहिये। क्यों कि, वारों के लिये इस चक्र में कोई पृथक् कोष्ठक नहीं रक्खे गये हैं। इस प्रकार मैंने (ग्रन्थकर्त्ता नरपति आचार्य ने) सर्वतोभद्रचक्र के निर्माण का सविस्तर विधान बतलाया है।

समीक्षा—एकाशीतिपदचक्र को ही सर्वतोभद्रचक्र समझना चाहिये। क्यों कि, ग्रन्थकारने दोनों ही नामों से इस चक्र का उल्लेख किया है।

इस के आगे नरपतिजयचर्या की कितनी ही मुद्रित तथा हस्तलिखित पुस्तकों में नीचे लिखे हुए दो वचन अधिक पाये जाते हैं:—

"ऊर्ध्वदृष्टी च भौमार्कौ केकरौ बुधभार्गवौ।
समदृष्टी च जीवेन्दू शनिराहू त्वधोमुखौ॥
नीचस्थ ऊर्ध्वदृष्टिःस्यादुच्चैरधो निरीक्षयेत्।
समश्च पार्श्वतोदृष्टिस्त्रिधा दृष्टिः प्रकथ्यते॥

सूर्य और मंगल ऊर्ध्वदृष्टि हैं, बुध और शुक्र केकरदृष्टि हैं। चन्द्र और गुरु समदृष्टि हैं एवं शनि और राहु अधोदृष्टि हैं। नीचराशिस्थित ग्रह ऊर्ध्वदृष्टि, उच्चराशिस्थित ग्रह अधोदृष्टि और समस्थान (उच्च-नीच के मध्य का स्थान) में स्थित ग्रह पार्श्वदृष्टि कहा जाता है।

इस प्रकार उपर्युक्त पहिले वचन में सूर्यादि ग्रहों की ऊर्ध्वदृष्टि आदि चार प्रकार की दृष्टियाँ और दूसरे वचन में सभी ग्रहों की तीन प्रकार की दृष्टियां भी बतलाई गई हैं। परन्तु ग्रहों का

यह ऊर्ध्वदृष्टि आदि स्वभाव इस सर्वतोभद्रचक्र में काम नहीं आ सकता। क्यों कि, चक्र के निर्माण की परिभाषा और वेध के विधान में विरोध होता है, जैसा कि निम्नलिखित विचार से प्रकट होता है। इस सर्वतोभद्रचक्र में नक्षत्रों के स्थान परिधिभूत हैं और वे ही अबतक वेधारंभ के प्रधान स्थान माने जाते हैं। अर्थात् इन नक्षत्रों पर स्थित ग्रहों की गति के आधार पर वाम, सम्मुख और दक्षिण की ओर वेध लेकर ही शुभाशुभ फल का विचार किया जाता है। ऐसी स्थिति में मान लीजिये कि, यदि कोई ग्रह चक्र को ऊर्ध्वपंक्ति में नीचराशिगत किसी नक्षत्र के किसी चरण में स्थित हो, तो वह ऊर्ध्वदृष्टि होने के कारण नीचे की तरफ वेध नहीं कर सकता। और इसी तरह यदि कोई ग्रह नीचे की पंक्ति में उच्चराशिगत किसी नक्षत्र के किसी चरण में स्थित हो, तो वह ऊपर की तरफ वेध नहीं कर सकता। कारण कि, इस चक्र में पूर्व पंक्ति के परिधिभूत नक्षत्रस्थान से ऊपर की ओर तथा पश्चिम पंक्ति में नीचे की ओर कोई भी वेध्य नहीं हैं। इस लिये इस सर्वतोभद्रचक्र में तो इन वचनों का किसी प्रकार भी उपयोग होना सर्वथा असंभव है। वास्तव में ग्रहों का यह ऊर्ध्व-दृष्टि आदि स्वभाव दृष्टितुम्बुर चक्र में काम आता है। क्यों कि, ग्रन्थकर्त्ता ने उसी चक्रमें इन वचनों को लिखा है। और जय-लक्ष्मी टीकाकार ने भी उसी प्रकरण में उक्त वचनों की व्याख्या की है। यही नहीं; नरपति ने 'कोटचक्र' में ग्रहोंका शुभाशुभत्व, तीन प्रकार का ग्रहचार, ऊर्ध्वादि दृष्टियों के भेद, उदयास्तसहित-वक्रशीघ्रसमत्व का ज्ञान, ग्रहों की गतियों के भेद, मित्रामित्र-विचार भी प्रदर्शित किये हैं। अर्धचन्द्राकृति कोटचक्र में भी ग्रहों के ऊर्ध्वदृष्टि आदि स्वभाव को ग्रहण किया है। इस प्रकार नरपतिजयचर्याग्रन्थ के पूर्वापरपर्यालोचन से, सर्वतोभद्रचक्र से

भिन्न अन्य चक्रों में ही ग्रहों का ऊर्ध्वदृष्टि आदि स्वभाव मानना चाहिये; यह निर्विवाद सिद्ध है। सखेद आश्चर्य होता है कि, नरपतिजयचर्या की 'जयलक्ष्मी' 'नारहरी' आदि टीकाओं के प्रणेताओं ने भी उक्त दोनों वचनों की इस स्थल पर न तो व्याख्या ही की और न कोई इन वचनों के प्रसंग का कोई संकेत ही किया है, फिर भी उच्चकोटि में गिनेजानेवाले महान् विद्वानों ने नहीं मालूम कैसा संशोधन किया है कि, ऐसे प्रामादिक पाठ को समूल एवं प्रकृतोपयोगी मान कर, जैसा पाठ मिला, वैसाही ज्यों का त्यों प्रकाशित करने की अनुमति दे दी ?

चक्र में ग्रहों की दृष्टियों के द्वारा वेध का विधान।

यस्मिन् ऋक्षे स्थितः खेटस्ततो वेधत्रयं भवेत्।
ग्रहदृष्टिवशेनाऽत्र वाम-सम्मुख-दक्षिणम्॥

ग्रह जिस नक्षत्र पर स्थित होता है, उस अवधिभूत नक्षत्र-स्थान से आगे की कारिका में कही जानेवाली ग्रहों की तीन प्रकार की दृष्टियों के आधार पर इस चक्रमें वाम, सम्मुख और दक्षिणकी ओर वेध करता है।

भौमादि पांच तारा–ग्रहों की-व्यवस्था।

वक्रगे दक्षिणा दृष्टिर्वामा दृष्टिश्च शीघ्रगे।
मध्यचारे तथा मध्या ज्ञेया भौमादिपञ्चके॥

भौमादि पांच (मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि) ग्रहों की वक्री होने पर निजस्थान से दाहिनी ओर, शीघ्री होने पर बाँई तरफ़ और मध्यचारी होने पर सामने की ओर, दृष्टि होती है। क्यों कि, ये भौमादि पांच ग्रह कभी वक्री कभी शीघ्री और कभी मध्यचारी हुआ करते हैं।

शेष चार ग्रहों की दृष्टि-व्यवस्था।

राहुकेतू सदा वक्रौ शीघ्रगौ चन्द्रभास्करौ ।
गतेरेकस्वभावत्वादेषां दृष्टित्रयं सदा ॥

राहु केतु (दोनों) सदा वक्री रहते हैं और चन्द्र-सूर्य (दोनों) सर्वदा शीघ्रगामी । इसलिये इन चारों ग्रहों की सर्वदा एक स्वभाव की ही गति होने के कारण, सदैव तीनों ही (वाम, सम्मुख और दक्षिण की) ओर दृष्टियां होती हैं ।

समीक्षा—उपर्युक्त दोनों वचनों में दृष्टिशब्द का प्रयोग वेधाभिप्राय से किया गया है। क्यों कि, राशिचक्र में जिस तरह दाहिनी ओर की, सामने की और बांई तरफ की राशियों पर दृष्टि होती है, उसी तरह इस सर्वतोभद्रचक्र में भी तीनों तरफ़ वेध हुआ करता है । इसलिये, यहां पर यह समझ लेना अत्यावश्यक है कि, 'दृष्टि और वेध में क्या अन्तर है ?'

स्वरशास्त्रज्ञ पूर्वाचार्यों ने कहीं कहीं पर 'दृष्टि' और 'वेध' को तुल्यार्थक मान कर वेधाभिप्राय से दृष्टिशब्द का जो प्रयोग किया है, उसका तात्पर्य यह है कि, उनके मत में दृष्टि दो प्रकार की है । एक स्थूल वा साधारण और दूसरी सूक्ष्म वा गहरी । अथवा यों कहिये कि, एक बाह्य और दूसरी आन्तरिक । स्थूल अथवा बाह्यदृष्टि उसे कहते हैं, जो मेषादि राशिमण्डल को किसी राशि में स्थित ग्रह की किसी राशि वा ग्रह पर जितनी दृष्टि जातकशास्त्र तथा स्वरशास्त्र में बतलाई गई है । और सूक्ष्म अथवा आन्तरिक (गहरी) दृष्टि वह है, जिसे स्वरशास्त्र में वेधशब्द से व्यवहृत किया गया है और जो सर्वतोभद्र आदि चक्रों में किसी नक्षत्र पर स्थित ग्रह की वाम, संमुख और दक्षिण की ओर वेध मार्ग में आनेवाले वर्णादिकों

पर हुआ करती है। इसी बात को और भी स्पष्ट रीति से इस तरह समझा जा सकता है कि, मानों आप एक आम्रवृक्ष के पास खड़े हैं और वह समस्त वृक्ष आप के दृष्टिगोचर हो रहा है, तो यह साधारण वा बाह्यदृष्टि हुई। और यदि उसी वृक्ष के किसी एक ही फल, फूल या डाली पर आप की दृष्टि रुकी हुई है, तो वह सूक्ष्म वा गहरी दृष्टि होगी। जितनी सुन्दर और सूक्ष्म विवेचना गहरी दृष्टि से की जा सकती है, उतनी साधारण दृष्टि से नहीं की जा सकती। फिर भी उस साधारण दृष्टि का होना अत्यन्त आवश्यक है। क्यों कि, जबतक समस्त वृक्ष आप के दृष्टिगोचर न होगा, तबतक उसके किसी फल-पुष्पादि अङ्ग का विशेष विवेचन हो सकना अति-कठिन और असंभव होगा। ठीक यही अवस्था ग्रहों की भी समझना चाहिये। उनकी चराचर जगत् के सभी पदार्थों का जिन जिन राशियों में समावेश—आश्रयस्थान है, उन उन राशियों पर शास्त्र-कथित साधारण दृष्टि तो होना ही चाहिये। पीछे से स्वरोदयशास्त्रोक्त देश, काल एवं वस्तुमात्र के वर्णादिपञ्चक पर वेधस्वरूप गहरी दृष्टि को लेकर सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचन किया जा सकता है। यद्यपि साधारण दृष्टि से सूक्ष्म विवेचन तो न हो सकेगा, फिर भी कुछ सामान्य निर्णय तो हो ही जायगा। परन्तु यदि वेध तो होगा और साधारण दृष्टि न होगी, तब तो कुछ भी विवे-चन—फलनिरूपण—न हो सकेगा। इस तरह यह सिद्ध हो जाता है कि, दृष्टि और वेध का संबंध शरीर और प्राण जैसा है। दृष्टि शरीर है तो वेध प्राण है। जिस तरह प्राण सूक्ष्म और अत्या-वश्यक होते हुए भी शरीर के सापेक्ष है, उसी तरह वेध भी दृष्टि के सापेक्ष है। और जिस तरह शरीर के न रहने पर प्राण को कोई भी क्रिया पूरी नहीं हो सकती, ठीक उसी तरह साधारण दृष्टि के विना वेध भी क्रियारहित हो जाता है—कुछ भी शुभा-

शुभ फल नहीं कर सकता। यही बात ग्रन्थकार नरपति आचार्य ने भी आगे इस अर्घकाण्ड में कही है।

ग्रहों के उदय और वक्रशीघ्रसमत्व का ज्ञान।

सूर्यमुक्ता उदीयन्ते शीघ्राश्चार्के द्वितीयगे।
समास्तृतीयगे ज्ञेया मन्दा भानौ चतुर्थगे॥
वक्राः स्युः पञ्चमे षष्ठे त्वतिवक्रा नगाष्टगे।
नवमे दशमे भानौ जायते कुटिला गतिः॥
द्वादशैकादशे सूर्ये भजन्ते शीघ्रतां पुनः।
ग्रहगत्या क्रमेणैवं वेधदृष्टिं वदेत् सुधीः॥

ग्रह जब सूर्यमण्डल से निकल जाते हैं, तब वे उदित समझे-जाते हैं। और जब किसी ग्रह से दूसरे स्थान में सूर्य हो, तब वह ग्रह शीघ्री कहा जाता है। ग्रह से तीसरे स्थान में सूर्य हो, तो वह ग्रह समगति होता है। ग्रह से चतुर्थ स्थान में सूर्य हो, तब वह ग्रह मन्दगति कहा जाता है। ग्रह से पांचवें और छठे स्थान में सूर्य हो तो वह ग्रह वक्री, और सातवें तथा आठवें स्थान में सूर्य हो, तो अतिवक्री माना जाता है। ग्रह से नवम और दशम स्थान में सूर्य हो, तब वह ग्रह कुटिलगति होता है। ग्रह से ग्यारहवें और बारहवें स्थान में सूर्य हो, तो वह ग्रह फिर शीघ्री होता है। इस प्रकार की ग्रहगति के द्वारा विद्वानों को चाहिये कि, वे वेधोपयुक्त दृष्टि को समझें।

समीक्षा—यद्यपि उक्त वचनों में सूर्य के साथ एक ही राशि में रहनेवाले ग्रह की गति का कोई संकेत नहीं है, तथापि ग्रह से बारहवें और दूसरे स्थान में सूर्य के स्थित होनेपर जब कि उस ग्रह को शीघ्री बतलाया है, तब बारहवें और दूसरे स्थान के

मध्य में सूर्य के साथ एक ही राशि में रहनेवाले ग्रह को भी शीघ्री ही समझना चाहिये। किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि, उक्त वचनों में सूर्य के साथ एक ही राशि में रहनेवाले ग्रह की गति का कोई भी उल्लेख न होने के कारण उस ग्रह को मध्यगति ही समझा जाय। परन्तु ऊपर कहा हुआ यह वक्रादिलक्षण मङ्गल, गुरु और शनि के लिये ही समझना चाहिये। क्यों कि, सर्वतोभद्रचक्रविषयक संग्रहग्रन्थों में इसी स्थल पर बुध-शुक्र के विषय में यह विशेष नियम लिखा मिलता है कि:—

"सूर्याद्विने द्वादशे च ज्ञसितौ वक्रशीघ्रगौ।
तृतीयैकादशे चैव शुक्रसौम्यौ समौ स्मृतौ॥"

सूर्य से दूसरे और बारहवें स्थान में स्थित बुध और शुक्र (क्रम से) वक्री और शीघ्री होते हैं। और सूर्य से तीसरे तथा ग्यारहवें स्थान में वे बुध-शुक्र समगति माने जाते हैं। सिद्धान्तवेत्ता विद्वानों से छिपा नहीं है कि, सिद्धान्तकथित ग्रहगणित की रीति से किसी तरह भी सूर्य से तीसरे या ग्यारहवें स्थान में बुध-शुक्र की स्थिति नहीं होती। अतएव ऊपर कहा गया यह वक्रादिलक्षण प्रायोवादसिद्ध (स्थूल) है। वास्तव में भौमादि पांच ग्रहों की मध्यमगति से स्फुटगति जब अधिक हो, तब वे शीघ्री हुआ करते हैं। और जब उनकी मध्यमगति के समान स्फुटगति भी हो, तब वे समगति होते हैं। इन ग्रहों की जब मध्यमगति से भी स्फुटगति न्यून हो जाती है, तब ये भौमादि पांच ग्रह मन्दगति कहे जाते हैं। और जब भौमादि पांच ग्रहों की गति पीछे की तरफ उलटती है, तब ये ग्रह वक्री होते हैं। बस, यही निर्दोष लक्षण है।

ग्रहों की गतियों के भेद।

सिद्धान्तग्रन्थों में ग्रहों की आठ प्रकार की गतियां बतलाई हैं। उनमें से वक्री, अतिवक्री और कुटिलगति वाले ग्रह को वक्री, तथा शीघ्री और अतिशीघ्री ग्रह को शीघ्री, एवं सम, मध्य तथा मन्दगति वाले ग्रह को मध्यचारी मान कर, ग्रन्थकर्ता नरपति ने इस सर्वतोभद्र चक्र में वाम, संमुख और दक्षिण की ओर वेध लेने के योग्य बताया है।

भौमादि पांच ग्रहों की मध्यमगति का कलादि मान।

ग्रह—	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
कला—	३१	५६	५	५६	२
विकला-	२६	८	०	८	०

भौमादि पांच ग्रहों की परम शीघ्र गति का कलादि मान।

ग्रह—	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
कला—	४६	११३	१४	७५	७
विकला—	११	३२	४	४२	४५

कभी कभी इन ग्रहों की परम शीघ्रगति का मान न्यूनाधिक भी हुआ करता है। वह पञ्चाङ्ग में दी हुई ग्रहगति से जाना जा सकता है।

समीक्षा—मध्यवेध के संबंध में. मूल ग्रन्थकार ने कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है। किन्तु जयलक्ष्मी टीकाकार ने 'स्वरादेश' नामक ग्रन्थ के—"ग्रहः सव्यापसव्येन चक्षुषा वेधयेत्पुनः। ऋक्षा-क्षरस्वरादींस्तु सम्मुखेनान्त्यभं तथा ॥" इस वचन को उद्धृत कर, यह बतलाया है कि, ग्रह का जब संमुख वेध होगा, तब केवल सामने के नक्षत्र को ही होगा, बीच में आनेवाले वर्णस्वरादि को न होगा। किन्तु नरहरि टीकाकार ने संमुखवेध का स्वीकार किया है। ग्रन्थान्तरों के देखने से दोनों ही मत पाये जाते हैं। पं० मीठा-

लालजी के सम्पादित सर्वतोभद्रचक्र में भी यह वचन है। लगभग आधी शताब्दि से इस मुद्रित ग्रंथ के आधार पर भारतीय विद्वान् तेजी-मंदी का निर्णय करते आये हैं। तदनुसार फल कैसा और कितना घटित होता है, यह तो विद्वान् लोग ही जानें। हमें तो नरपति का इस विषय में क्या मन्तव्य है; यही देखना है। मूल-वचन से तो यही स्पष्ट होता है कि—'मध्यचारे तथा मध्या' मध्य में आने वाले वर्णादि पर वाम-दक्षिण वेध की तरह यह संमुख वेध भी होता है। क्योंकि, नरपति ने इस संबंध में अपने ग्रन्थ में कहीं भी इसके विरुद्ध कुछ भी नहीं लिखा है।

मध्यवेध को गर्ग, लल्ल, वराह आदि आचार्यों ने भी माना है। किन्तु वाम-दक्षिण वेध की अपेक्षा संमुखवेध को दुर्बल माना है। उन्हों ने मध्यवेध में, वेध की न्यूनाधिकता को बतलाते हुए फल में भी न्यूनाधिकता सूचित की है। यह विषय हमारे सम्पादित 'सर्वतोभद्रदर्पण' में विस्तार से आपको देखने के लिये मिलेगा। सचमुच 'सर्वतोभद्रदर्पण' में वे ही अत्यावश्यक रहस्य-सूचक विषय लिखे गये हैं, जिनकी चर्चा प्रचलित नरपतिजयचर्या, विजयस्तम्भ, समरसार आदि ग्रन्थों में नहीं है। लेख बढ़ जाने के भय से हम यहाँ नहीं लिख रहे हैं।

चक्रस्थित कोणगत स्वरों के वेध का विशेष नियम।

अन्त्याद्यपादयोः खेटे गते कोणगधिष्ण्ययोः।
अकारादिचतुष्कस्य वेधः पूर्णातिथेस्तथा॥

चक्र में कोणगत दो दो नक्षत्रों के अन्त्य और आदि के चरणों पर जब कोई ग्रह स्थित होता है, तब वह (कोणगत) अकार आदि चार स्वरों और पूर्णातिथि को वेध करता है।

समीक्षा—कोणगत स्वरों तथा पूर्णा तिथि के वेधसंबंध में कुछ

विद्वानों ने यह व्याख्या की है कि, कोण से आगे का कृत्तिका नक्षत्र है उसका पहिला चरण और कोण से पीछे को ओर भरणी नक्षत्र है, उसका चौथा चरण; इस प्रकार इन दोनों चरणों पर जब कोई ग्रह स्थित होता है, तब वह अकारादि चार स्वरों और पूर्णातिथि को वेध करता है । उनका कहना है कि, कोणगत अकारादि चार स्वर वेही लिये जांय, जो चक्र के प्रत्येक भ्रमण में ईशान आदि चारों कोणों में 'अ उ लृ ओ' इत्यादि चार चार स्वर लिखे गये हैं। किन्तु कुछ अन्य विद्वान् कहते हैं कि, यह व्याख्या उचित नहीं है। क्यों कि, उकारादि स्वरों का वेध तो पूर्वोक्तरीति से वेधमार्गप्राप्त ही है; किन्तु कोणगत अकारादि (अ आ इ ई) इन चार स्वरों को पूर्वोक्त वेधपद्धति से वेध नहीं प्राप्त होता; इसलिये कोणगत अ आ इ ई, इन चार स्वरों के वेध की प्राप्ति के लिये ही यह वचन लिखा गया है। परन्तु वास्तव में यह कथन भी असंगत है। कारण कि, किसी एक कोण के नक्षत्र-चरण पर स्थित ग्रहका अन्य सभी कोणगत स्वरों से संबंध नहीं हो सकता। अतएव भरणी के चतुर्थ पाद और कृत्तिका के प्रथम पाद पर स्थित ग्रह का कोणगत केवल अकारस्वर को ही वेध होगा। आश्लेषा के चौथे और मघा के पहिले चरण पर स्थित ग्रह का कोणगत केवल आकार स्वर को ही वेध होगा। विशाखा के अन्तिमपाद और अनुराधा के आद्यपाद पर स्थित ग्रह का इकार स्वर को ही वेध होगा। और श्रवणनक्षत्र के चतुर्थचरण तथा धनिष्ठा के प्रथमचरण पर स्थित ग्रह का ईकार स्वर को ही वेध होगा। साथ ही प्रत्येक कोणगत नक्षत्रों के अन्त्य तथा प्रथम पाद पर स्थित ग्रह का पूर्णातिथि को भी वेध होगा। यही बात स्पष्ट शब्दों में 'स्वरादेश' नामक ग्रन्थ में कही गई है कि:—

"भरण्यन्त्ये कृत्तिकाद्ये पादे वेधोऽस्वरे ग्रहे।
तथा पूर्णातिथेर्वेधं चिन्तयेत् सुविचक्षणः॥"

दामोदरी-पद्धति में, दामोदर दैवज्ञ का मत तो कुछ और ही है। वे कहते हैं कि, भरणी के चतुर्थ पाद पर स्थित ग्रह मार्गी होने पर ही कोणगत अकार स्वर को वेध कर सकेगा, वक्री होने पर नहीं। क्यों कि, वक्री ग्रह पराङ्मुख होता है। इसी प्रकार कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम पाद पर स्थित ग्रह वक्री होने पर ही कोणगत अकार स्वर को वेध कर सकेगा, मार्गी होगा तो नहीं। क्यों कि, वह भी विमुख होता है। पूर्णातिथि को तो वक्री और मार्गी दोनों ही ग्रहों का वेध होगा। कारण कि, उपपत्ति को सभी ने प्रबल माना है।

उपर्युक्त विवेचन से यही सिद्ध होता है कि, चक्र में आरंभ के चार कोणों में पहिले भ्रमण में जो अ आ इ ई; यह चार स्वर लिखे गये हैं; वे वेधमार्ग में नहीं आते। इन पर कोणगत नक्षत्र के अन्तिम चरण पर स्थित मार्गी ग्रह का वेध और प्रथम पाद पर स्थित वक्री ग्रह का वेध होता है। साथ ही पूर्णातिथि को भी कोणगत नक्षत्रों के अन्त्य और आद्य चरण पर स्थित मार्गी तथा वक्री ग्रहों का वेध होगा। और मध्यचारी ग्रह का कोणगत नक्षत्र के अन्त्य पाद पर स्थित हो कर कोणगत स्वर तथा पूर्णा को तभी वेध हो सकेगा, जब कि, वह मार्गी होने के बाद धीमी चाल से आगे की ओर बढ़ता रहता है। इसी प्रकार कोणगत नक्षत्र के प्रथम पाद पर स्थित मध्यचारी ग्रह का वेध तभी हो सकेगा, जब कि, वह वक्री होने के लिये पीछे की ओर मन्दगति से चलता है।

चक्र में अनुक्त घ ङ छ आदि वर्णों के वेध का ज्ञान।

घङछाः षणठाश्चैव धफढास्थझञास्तथा।
एतत् त्रिकं त्रिकं विद्धं विद्धैः क प भ दैः क्रमात् ॥

जिन वर्णों का सर्वतोभद्रचक्र में विन्यास नहीं किया गया है, उनके वेधज्ञान का उपाय बतलाते हैं कि, चक्र में लिखे हुए क–प–भ–द; इन वर्णों को वेध होने पर, क्रम से घ ङ छ, ष ण ठ, ध फ ढ और थ झ ञ; इन तीन तीन वर्णों को भी वेध हो जाता है। क्यों कि, चक्र में उक्त वर्णों का विन्यास नहीं किया है। अतएव क–प–भ–द वर्णों के साथ साथ घ ङ छ आदि प्रत्येक त्रिक का भी वेध माना जाता है।

घङछा रौद्रगे विद्धाः षणठा हस्तगे ग्रहे।
धफढाः प्रागषाढायां थझञा भाद्र उत्तरे ॥

प्रकारान्तर से भी घ ङ छ आदि प्रत्येक त्रिक का वेध-विधान बतलाते हैं कि, कोई भी सौम्य वा क्रूर ग्रह जब आर्द्रा नक्षत्र पर पहुँचता है, तब घ ङ छ; इन वर्णों को वेध होता है। हस्त नक्षत्र पर जब कोई ग्रह स्थित होता है, तब ष ण ठ; इन वर्णों को वेध होता है। पूर्वाषाढा नक्षत्र पर जब कोई ग्रह हो, तब ध फ ढ; इन वर्णों को और जब कोई ग्रह उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र पर स्थित होता है, तब थ झ ञ; इन वर्णों को वेध होता है।

समीक्षा—वास्तव में तत्व यह है कि, घ ङ छ आदि प्रत्येक वर्ण उन उन नक्षत्रों का नवांश—स्वरूप है। अतएव आर्द्रादि पूर्वोक्त चार नक्षत्रों के घ ङ छ आदि जिस जिस नवांश पर ग्रह स्थित होगा, चाहे वह ग्रह वक्री वा शीघ्री अथवा मध्यचारी क्यों न हो, उसका उस उस नवांशगत

घ ङ छ आदि वर्ण को ही वेध होगा। उसी नक्षत्र पर स्थित होकर अन्य नवांशगत वर्ण को नहीं। यह वेध पूर्वोक्त वाम, संमुख और दक्षिण वेध से भिन्न 'स्थितिज' वेध है।

'समरसार' के प्रणेता ने तो:—

"रौद्रादिमध्यस्थभचतुष्कवेधतो वेधमादिशेत् क्रमशः ।
घङछां पणठां धफढां थझञामिति सर्वतोभद्रम् ॥"

इस वचन के द्वारा आर्द्रादि चार नक्षत्रों को किसी ग्रह का वेध होने से घ ङ छ आदि वर्णों के वेध का एक तीसरा ही प्रकार बतलाया है। किन्तु वह बहुसम्मत नहीं है।

सर्वतोभद्रचक्र में जिन वर्णों का विन्यास किया गया था और जिन वर्णों का नहीं किया गया था, उन के वेध-विधान का तो वर्णन किया जा चुका है। अब जिन वर्णों का प्रचलित प्रान्तीय भाषाओं में भिन्न भिन्न उच्चारण वा उल्लेख सुनने वा देखने में आता है; उन वर्णों के वेधज्ञान का प्रचार बतलाते हैं कि: —

वबौ सशौ खषौ चैव जयाविति परस्परम् ।
ज्ञेयौ तुल्यफलौ भिन्नस्वरस्याधः स्थितावपि ॥

चक्र में यवर्गीय वकार है, पवर्गीय बकार नहीं। यदि किसी के नाम का आद्यवर्ण पवर्गीय बकार हो, अथवा कोई मनुष्य 'व' के स्थान में 'ब' का उच्चारण करे या लिखे–जैसे 'वेद' को 'बेद' और 'विद्या' को 'बिद्या' तो वहां पर दोनों वर्णों को समान मान कर दोनों वर्णों का (आगे लिखे जाने वाले वर्ण-स्वरचक्र में) भिन्न भिन्न स्वर होते हुए भी दोनों वर्णों के वेध का तुल्य ही फल समझना चाहिये। इसी प्रकार दन्त्य सकार और तालव्य शकार को भी समान मानना चाहिये। जैसे

कोई 'शङ्कर' को 'संकर' और 'शालिग्राम' को 'सालिग्राम' कहे या लिखे तो ऐसी स्थिति में चक्र में लिखे हुए सकार को वेध होने पर शकार को भी वेध हो जायगा; भले ही सकार और शकार के स्वर भिन्न भिन्न ही क्यों न हों? और वेधफल तो दोनों का बराबर ही होगा। इसी तरह कण्ठस्थानीय खकार और मूर्धन्य षकार भिन्न भिन्न स्वरवाले होते हुए भी परस्पर समान हैं। एक को वेध होने से दूसरे को भी वेध हो जायगा और फल भी तुल्य ही माना जायगा। जैसे—'षण्मुख' को 'खण्मुख' अथवा 'षडानन' को 'खडानन' कोई कहे तो वहाँ 'ष' और 'ख' को समान मान कर एक को वेध होने पर दूसरे को भी वेध होगा और फल भी तुल्य ही होगा। इसी तरह 'य' और 'ज' दोनों वर्ण समान हैं। यदि कोई मनुष्य 'यजमान' को जजमान' 'यागेश्वर' को 'जागेश्वर' और 'यज्ञ' को 'जज्ञ' कहे, तो वहां पर यद्यपि दोनों वर्णों के स्वर भिन्न भिन्न हैं, तथापि वे तुल्यफल ही समझे जांयगे और एक को वेध होने पर दूसरे को भी वेध हो जायगा।

अब वेधविचारार्थ कौन कौन वेध्य लिये जाँय? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि:—

देशःकालस्तथा पण्यमिति त्रीण्यर्घनिर्णये।
चिन्तनीयानि वेध्यानि सर्वकालं विचक्षणैः॥

वस्तुमात्र के मूल्य का निर्णय करने के लिये, विद्वानों को चाहिये कि, देश, काल और पण्य (क्रय-विक्रय के पदार्थ); इन तीनों को सर्वदा वेध्य समझें।

समीक्षा—भावार्थ यह है कि, व्यापारीवर्ग को यह जान लेना अत्यन्त आवश्यक है कि, किस देश में, किस समय,

Institute of Advanced Study
Acc No 23836
Date 20.3.68

किस वस्तु का क्या मूल्य अथवा भाव होगा ? क्यों कि, जहाँ पर जो वस्तु जिस समय सस्ती हो, वहां से खरीद कर, तेजी का समय आने पर बेच देने से वास्तविक लाभ हो सकता है। इसी बात को पहिले से जान लेने के लिये, स्वरशास्त्र के अनुसार देश, काल और पण्य के वर्णादिपञ्चक पर इक्यासी कोष्ठक वाले 'सर्वतोभद्रचक्र' के द्वारा नक्षत्रों पर स्थित ग्रहों का वेध देखना चाहिये कि, देशादि के किन किन वर्णादिकों पर किन किन ग्रहों का वेध हो रहा है।

देश के भेद।

देशोऽथ मण्डलं स्थानमिति देशस्त्रिधोच्यते।

१ देश २ मण्डल और ३ स्थान; इस प्रकार देश के तीन भेद कहे गये हैं। जैसे—१ देश=भारतवर्ष। २ मण्डल=बंगाल, पंजाब, गुजरात, युक्तप्रान्त आदि। और ३ स्थान=कलकत्ता, बंबई, कानपुर, हाथरस, दिल्ली, बनारस आदि बड़े बड़े नगरों से लेकर छोटे से छोटे गांव तक।

काल के भेद।

वर्षं मासो दिनञ्चेति त्रिधा कालोऽपि कथ्यते॥

१ वर्ष २ मास और ३ दिन; इस प्रकार काल भी तीन तरह का कहा जाता है।

समीक्षा—यद्यपि काल के वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, घटी, पल आदि अनेक भेद शास्त्रों में पाये जाते हैं, परन्तु उक्त वाक्य में केवल तीन प्रकार के काल का जो निर्देश किया गया है, वह लोकव्यवहार को ध्यान में रखकर ही लिखा है। क्यों कि, व्यापारीगण पिछले वर्ष में उत्पन्न होने वाले पदार्थों की इस वर्ष में कैसी खपत हुई और आगे की फसल कैसी होगी ? इत्यादि

बातों का अन्दाज लगाकर ही वाणिज्य-संबंधी पदार्थों का संग्रह करते हैं। इसी लिये 'वर्ष' को वेध्य माना है। साल भर में किसी किसी महीने में ही देश देशान्तर से व्यापारीगण व्यापारी मंडियों में माल खरीदने को जैसी संख्या में इकट्ठे होते हैं, तदनुसार उन उन महीनों में ही वस्तुओं के परिमाण वा मूल्य में घटाबढ़ी होते देखकर 'मास' को वेध्य माना है। इसी प्रकार दूकान में विक्रयार्थ रक्खे हुए माल को दिन भर होने वाली खरीद-बिक्री के आधार पर 'दिन' को वेध्य माना गया है।

उक्त वाक्य में वर्ष मास और दिन; यह तीनों काल सामान्य रूप से कहे गये हैं। इनकी कोई विशेष व्याख्या नरपति ने इस अर्घकाण्ड में नहीं की। किन्तु आजकल के व्यापारक्रम को देखते हुए यह उचित प्रतीत होता है कि, जिस देश में व्यापारीगण जैसा या जब से जबतक का 'वर्ष' मानते हों, उस देश में वही 'वर्ष' माना जाय। इसी तरह मास और दिन भी समझे जाँय। क्यों कि, आधुनिक व्यापारीजन जुदा जुदा कालमान मानते हैं। जैसे—हमारे भारतवर्ष में ही कुछ लोग चैत्रशुक्ल प्रतिपदा से नूतन वर्ष का आरंभ मानते हैं, तो कुछ लोग मेष-संक्रान्ति से और कोई कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से नवीन वत्सरारंभ मानते हैं। इसी तरह कहीं शुक्लादि मासगणना का प्रचार है तो कहीं कृष्णादि मास का व्यवहार चालू है। कहीं कहीं व्यापारी मंडियों में भिन्न भिन्न तिथियों से ही मासारंभ माना जाता है। इस लिये जहां के व्यापारी जैसा वर्ष, जैसा मास और जैसा दिन मानते हों, वहां उसी अवधिकाल को वेध्य मानना युक्तिसंगत जान पड़ता है। क्योंकि, नरपतिप्रणीत द्वितीय अर्घकाण्ड के:—

'गुरुसङ्क्रान्तितो वर्षं मासे भास्करसङ्क्रमात्।
दिने वारोदयादेवं त्रिधा द्रव्यार्घनिर्णयः॥

इस वचन में कहे हुए पारिभाषिक वर्ष, मास और दिन के अनुसार व्यापारकार्य का संचालन आजकल नहीं हो रहा है।

पण्य के भेद।

धातुर्मूलश्च जीवश्च त्रिधा पण्यमपीष्यते ॥

खरीदने और बेचने की वस्तु को 'पण्य' कहा जाता है। पण्य भी अनेक हैं। उन्हें भी इस शास्त्र में व्यवहार और मूल्यादिनिर्णय की सुविधा के लिये १ धातु २ मूल और ३ जीव; इस प्रकार तीन तरह का माना है। जैसे—१ सुवर्ण से लेकर मिट्टी तक सभी खनिज पदार्थ और उनसे बने हुए आभूषणादि उनके विकार भी 'धातु' कहे जाते हैं। २ वृक्ष से उत्पन्न होनेवाले धान्य, औषधि, फल, फूल, तृण, काष्ठादि और उनसे बने हुए सभी पदार्थ 'मूल' कहे जाते हैं। ३ मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि सभी प्राणधारी 'जीव' कहलाते हैं। और उन जीवों से उत्पन्न होनेवाले शंख, कस्तूरी, कंबल, घी आदि पदार्थ भी 'जीव' कहे जाते हैं।

देश के वर्णादि-पञ्चक का ज्ञान।

जिस देश, मण्डल वा स्थान का विचार करना हो, उसके नाम में जो पहिला अक्षर हो, वह वर्ण, उस वर्ण का (वर्णस्वर चक्र में) जो स्वर हो, वह स्वर, और (तिथिवर्णस्वरचक्र में) उस वर्ण की जो तिथि हो, वह तिथि, नाम का पहिला वर्ण जिस मात्रास्वर से युक्त हो; वह 'शतपदचक्र' में जिस नक्षत्र में हो, वह नक्षत्र और वह नक्षत्र जिस राशि में हो, वह राशि; इस प्रकार देशादि का १ वर्ण, २ स्वर, ३ तिथि, ४ नक्षत्र ५ राशि, यह वर्णादिपञ्चक वेध्य होगा।

पण्य के वर्णादिपञ्चक का ज्ञान।

धातु, मूल, जीव में से जिस वस्तु का विचार करना हो, उस वस्तु का उस देश में जो सर्वसाधारण में प्रचलित और प्रख्यात नाम हो, उसके प्रथम वर्ण को लेकर देश के वर्णादिपञ्चक की तरह वर्णादिपञ्चक तैयार करके उनको वेध्य समझें।

काल के वर्णादिपञ्चक का ज्ञान।

काल का वर्णादिपञ्चक कभी स्थिर नहीं रहता। प्रत्येक समय में वह बदलता रहता है, जिससे वस्तुमात्र के मूल्य में बराबर परिवर्तन होता रहता है। इस लिये वर्ष, मास, दिन में से जिस समय का विचार करना हो, उस समय जो तिथि विद्यमान हो, वह तिथि। उस तिथि के (तिथि-वर्णस्वर-चक्र में) जो वर्ण और स्वर हों वे वर्ण और स्वर। विद्यमान तिथि के वर्ण का जो स्वर हो, उस स्वर से युक्त तिथि का वर्ण शतपदचक्र के जिस नक्षत्र में हो, वह नक्षत्र और वह नक्षत्र मेषादि राशिमण्डल में जिस राशि में हो; वह राशि। इस प्रकार काल का वर्णादिपञ्चक तैयार करके उनको वेध्य मानें।

नाम के विषय में कुछ आवश्यक नियम।

१ यदि किसी देश, मण्डल वा स्थान के अनेक नाम हों, तो जो नाम सब से पीछे का हो, उसी नाम के आद्यवर्ण से वर्णादिपञ्चक तैयार करें।

२ जहां के अधिकांश निवासी जिस वस्तु को जिस नाम से उच्चारण करते हों, उसी नाम के आद्यवर्ण से वर्णादिपञ्चक निर्माण करें।

३ यदि किसी स्थान अथवा वस्तु के नाम के आदि में संयुक्त

अक्षर हों, तो उन दोनों या अधिक मिले हुए वर्णों में से जो सर्वप्रथम वर्ण कहा जाता हो, उस वर्ण के द्वारा वर्णादिपञ्चक बनाना चाहिये।

४ यदि किसी स्थान अथवा वस्तु के नाम के आदि में वर्ण न होकर कोई स्वर हो, तो वहां उस स्वर को ही वर्ण तथा स्वर दोनों ही रूप में माना जायगा। क्यों कि, नाम के आद्यवर्ण से शतपदचक्र में नक्षत्र का निश्चय किया जाता है। उस शतपद-चक्र में तो अ इ उ ए ओ, इन स्वरशास्त्रोक्त स्वरों को वर्णरूप से ही लिखा गया है। अतएव ये पांचों स्वर नामाद्यवर्ण भी हैं और उनके स्वयं स्वर भी स्वरशास्त्रानुसार होते हैं। जैसे किसी को एक ही पुत्र हो, तो वही छोटा और वही बड़ा माना जाता है।

५ यदि किसी स्थान अथवा वस्तु के नाम के आरंभ में ऋ, ॠ, ऌ, ॡ' इन नपुंसक स्वरों में से कोई स्वर हो, तो उसे इकारयुक्त मानना चाहिये। जैसे—'ऋ' को रि, 'ॠ को री, 'ऌ' को लि और 'ॡ' को ली समझें। क्योंकि, ऋकार का सवर्णी रकार और ऌकार का सवर्णी लकार होता है। ऐसी दशा में रकार और लकार को नामाद्यवर्ण मान कर, वर्णादिपञ्चक बनाया जाय। दूसरी बात यह भी है कि, लोकभाषा में इन नपुंसक स्वरों का उच्चारण भी लोग ऐसा ही करते हैं और प्राचीन शिष्टजन इसी तरह इनका उपयोग भी करते आये हैं।

वर्ण के नक्षत्र का ज्ञान।

"चु चे चो ल पदे त्वाद्ये लि लु ले लो यमस्य भे।
अ इ उ ए इमेग्नेर्भे ओ व वि वु तथाऽब्जभे॥
वे वो क कि मृगे ख्याताः कु घ ङ छास्तु रौद्रभे।

के को ह हि त्वदितिभे हु हे हो ड च पुष्यभे ॥
डि डु डे डो इमे सार्पे म मि मु मे मघाभिधे ।
मो ट टि टु तथा भाग्ये टे टो पर्य्यर्यमर्क्षके ॥
पु प ण ठास्तथा हस्ते पे पो र रीति चित्रभे ।
रु रे रो त तथा स्वातौ ति तु ते तो द्विदैवभे ॥
न नि नु ने क्रमान्मैत्रे नो य यि यु इतीन्द्रभे ।
ये यो भ भीति मूलाख्ये भु ध फ ढा जलस्य भे ॥
भे भो ज जीति विश्वर्क्षे जु जे जो खाऽभिजिद् भवेत् ।
खि खु खे खो श्रुतौ ज्ञेया ग गि गु गे च वासवे ॥
गो स सि सु जलेशर्क्षे से सो द दीत्यजाङ्घ्रिभे ।
दु थ झ ञ तथोपान्त्ये दे दो च चीति पौष्णभे ॥
इति प्रोक्ता इमे पद्ये वर्णानामादिजाः स्फुटाः ।
ज्ञेया मेषादिराशीनां नवभिर्नवभिः पदैः ॥

(ज्यौतिषार्क)

अश्विनी से लेकर रेवतीपर्यन्त अभिजित्सहित समस्त नक्षत्रों के प्रत्येक चरण में अ इ उ ए ओ, इन पांच स्वरों से युक्त जो जो वर्ण हैं, उन वर्णों का उक्त वचनों में यथास्थान निर्देश किया गया है, जिससे नाम के स्वरयुक्त पहिले वर्ण से उस के नक्षत्र को पहिचानने में बड़ी ही सरलता हो जाती है ।

वर्णस्वरचक्र ।

अ	इ	उ	ए	ओ
क	ख	ग	घ	च
छ	ज	झ	ट	ठ
ड	ढ	त	थ	द
ध	न	प	फ	ब
भ	म	य	र	ल
व	श	ष	स	ह

नाम के आदि में जो पहिला वर्ण हो, वह ऊपर लिखे हुए 'वर्णस्वरचक्र' में जिस स्वर के नीचे हो, वही स्वर उस वर्ण का होता है।

तिथि-वर्णस्वरचक्र

तिथि	नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
स्वर	अ	इ	उ	ए	ओ
वर्ण	क छ	ख ज	ग झ	घ ट	च ठ
वर्ण	ड ध	ढ न	त प	थ फ	द ब
वर्ण	भ व	म श	य ष	र स	ल ह

प्रतिपदा से पूर्णिमा तक शुक्लपक्ष में और प्रतिपदा से अमावास्या तक कृष्णपक्ष में पांच पांच तिथियाँ तीन आवृत्तियों में क्रम से नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा कही जाती हैं। उनके स्वर भी उसी क्रम से होते हैं। जैसे—नन्दा का अस्वर, भद्रा का इस्वर, जया का उस्वर, रिक्ता का एस्वर और पूर्णा का ओस्वर। एवं प्रत्येक नन्दा आदि तिथि के क्रम से ऊपर के चक्र में दो दो वर्ण हैं।

समीक्षा—यहां पर एक शंका उठती है कि, तिथि तो एक है और उसके दो वर्ण हैं; तो ऐसी दशा में फलकथन में किस वर्ण को वेध्य समझा जाय? इस शंका का यही उचित उत्तर प्रतीत होता है कि, वहाँ पर उन दो वर्णों में से पहिला वर्ण शुक्लपक्ष में और दूसरा वर्ण कृष्णपक्ष में उस तिथिका मानकर वेधफल का विचार किया जाय। क्यों कि, शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष में तिथिवेध का फल भी भिन्न भिन्न हुआ करता है। यह बात ग्रन्थकार ने आगे कही है।

यहां पर एक बात ध्यान में रखना अत्यावश्यक है कि, वर्णादिपञ्चक में वर्ण के स्वर को जो वेध्य माना है, वह स्वर सर्वदा ह्रस्व ही लेना चाहिये। क्यों कि, वह मात्रास्वर नहीं है। मात्रास्वरों में आठ युगल (जोड़े) हैं। वहां एक को वेध होने से दूसरे को भी वेध हुआ करता है। वर्णस्वर में उसका सवर्णी दूसरा स्वर नहीं मानना चाहिये।

देश, काल और पण्य के पूर्वोक्त भेदों के अनुसार प्रत्येक त्रिक के ऊपर किन किन ग्रहों का प्रभुत्व है? इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं कि:—

अथ त्रिकत्रयस्यास्य वक्ष्यामि स्वामिखेचरान्।

अब हम पूर्वोक्त देश-मण्डल-स्थानात्मक देशत्रिक, वर्षमास-दिनात्मक कालत्रिक और धातु-मूल-जीवात्मक पण्यत्रिक के स्वामीग्रहों का वर्णन आगे की कारिकाओं द्वारा बतलावेंगे।

देशत्रिक के स्वामीग्रह।

देशेशा राहुमन्देज्या मण्डलस्वामिनः पुनः।
केतुसूर्यसिताः स्थाननाथाश्चन्द्रारचन्द्रजाः॥

देशत्रिक में देश के स्वामी राहु, शनि और गुरु हैं। मण्डल के स्वामी केतु, सूर्य और शुक्र हैं। और स्थान के स्वामी चन्द्र, मङ्गल और बुध हैं।

कालत्रिक के स्वामीग्रह।

वर्षेशा राहुकेत्वार्किजीवा मासाधिपाः पुनः।
भौमार्कज्ञसिता ज्ञेयाश्चन्द्रः स्याद्दिवसाधिपः॥

कालत्रिक में वर्ष के स्वामी राहु, केतु, शनि और गुरु हैं। मास के स्वामी मङ्गल सूर्य, बुध और शुक्र हैं। और दिन का स्वामी चन्द्रमा है।

समीक्षा—इस वचन में मन्दगतिवाले ग्रहों का वर्ष पर इस लिये स्वामित्व माना है कि, वे ग्रह अधिक समय तक एक राशि अथवा नक्षत्र पर स्थित हो कर देशादि के वर्णादिपञ्चक पर अपना अच्छा या बुरा प्रभाव वेध और दृष्टि के द्वारा डालते रहते हैं। उनसे कुछ तीव्रगतिवाले ग्रहों का मास पर प्रभुत्व इसलिये बतलाया गया है कि, प्रायः सूर्य, मङ्गल, बुध और शुक्र एक मास तक एक राशि में रहते हुए अपना शुभाशुभ प्रभाव जगत् के सभी पदार्थों पर डालते रहते हैं। और सब से अधिक तीव्र गतिवाले चन्द्रमा का दिन पर स्वामित्व इस अभिप्राय से माना

गया है कि, प्रतिदिन व्यापारीगण अपने अपने विचार के अनुसार विशेष संख्या में अथवा विशेषरूप से अपने अपने दैनिक व्यापार कार्यों का यथावत् संचालन करते रहते हैं। इस प्रकार कालत्रिक के स्वामियों का यथाधिकार विभाजन युक्तिसिद्ध एवं यथार्थफल का द्योतक है।

पण्यत्रिक के स्वामी ग्रह।

धात्वीशाः सौरिपातारा जीवेशा ज्ञेन्दुसूरयः।
मूलेशाः केतुशुक्रार्का इति पण्याधिपा ग्रहाः॥

पण्यत्रिक में धातु के स्वामी शनि, राहु और मङ्गल हैं। जीव के स्वामी बुध, चन्द्र और गुरु हैं। और मूल के स्वामी केतु, शुक्र और सूर्य हैं।

पुंग्रहा राहुकेत्वर्कजीवभूमिसुता मताः।
स्त्रीग्रहौ शुक्रशशिनौ सौरिसौम्यौ नपुंसकौ॥

राहु केतु सूर्य गुरु और मङ्गल पुरुष ग्रह हैं। शुक्र और चन्द्र स्त्री ग्रह हैं। और शनि बुध नपुंसक ग्रह हैं।

जिन पदार्थों की पुरुष, स्त्री या नपुंसक संज्ञा हो, उनके ये स्वामी होते हैं।

जिन पदार्थों में यह किसीप्रकार भी निश्चित न हो पावे कि वे धातु मूल और जीव में से किस में समझे जाँय अथवा रंग के आधार पर ही कोई निर्णय करना अभीष्ट हो, तो वहां उन के श्वेत, रक्त, पीले और काले आदि रंगों के ऊपर ग्रहों का स्वामित्व बतलाते हैं कि:—

सितेन्दू सितवर्णेशौ रक्तेशौ भौमभास्करौ।
पीतेशौ ज्ञगुरू कृष्ण-नाथाः केतुतमोऽर्कजाः॥

सफेद रंग के (पदार्थों के) स्वामी शुक्र और चन्द्र, लाल रंग के स्वामी मङ्गल और सूर्य, पीले रंग के स्वामी बुध और गुरु तथा काले रंग के स्वामी केतु, राहु और शनि हैं।

समीक्षा—यहां पर यह बात विशेष रूप से ध्यान में रखने की है कि, ऊपर कहे हुए देशादिस्वामी स्वाभाविक हैं। देशादि की राशियों के स्वामीग्रहों का स्वामित्व इस अर्घकाण्ड में अभिमत नहीं है। भ्रम से कोई देशादि को राशियों के स्वामी ग्रहों का देशादि के ऊपर स्वामित्व न समझ लें, इसीलिये पूर्वोक्त "देशेशा राहुमन्देज्याः" इत्यादि वचन लिखे गये हैं। अन्यथा उक्त वचन निरर्थक हो जांयगे।

ऊपर कहे हुए 'देशेशा राहुमन्देज्याः' इत्यादि वचनों में किसी के दो, किसी के तीन और किसी के चार ग्रह स्वामी बतलाये हैं, तो क्या वे सभी ग्रह एकसाथ ही उस वस्तु के स्वामी हो सकते हैं? अथवा समय समय पर निजबल के अनुसार जो सब में अधिक बलवान् हो, वही देशादि का स्वामी हो सकता है? इस शंका की निवृत्ति के लिये, वर्तमान में उपलब्ध मुद्रित वा हस्तलिखित 'नरपतिजयचर्या' में जो स्वामिनिर्णायक वचन पाये जाते हैं, वे भिन्न भिन्न पाठ वाले हैं, जिन से महान् व्यामोह होता है और सही सही निर्णय करना एक महादुष्कर कार्य हो जाता है। इसलिये यहां पर स्वामिनिश्चायक सुविशुद्ध वचनों का ही उल्लेख किये देते हैं :—

ग्रहो वक्रोदयस्वांशगृहोच्चेषु बली च यः।
देशादीनां स एवैकः स्वामी खेटस्तदा मतः॥

पूर्वोक्त देशादिस्वामियों में जो ग्रह वक्रबल, उदयबल, नवांशबल, क्षेत्रबल और उच्चबल में सबसे अधिक बली हो,

वही एक ग्रह जिससमय का विचार किया जा रहा हो, उस समय देशादि का स्वामी माना जाता है।

वक्रादि बलों की पूर्णता का अवधिस्थान।

वक्रोदयांशहर्म्येषु पूर्णवीर्यो ग्रहो भवेत् ॥

तदग्रपृष्ठगे खेटे बलं त्रैराशिकान्मतम् ॥

वक्रारम्भ से वक्रसमाप्तिपर्यन्त का जितना समय हो, उसके मध्य में वक्रबल पूर्ण होता है और उस मध्यकाल से आगे—पीछे उस ग्रह का वक्रबल त्रैराशिकगणित से अनुपात-सिद्ध होता है। इसी प्रकार ग्रह का जितना उदयकाल हो, उसके मध्यभाग में उदयबल पूर्ण होता है और उस मध्यकाल से आगे-पीछे त्रैराशिक की रीति से न्यूनाधिक अनुपातसिद्ध उदयबल हुआ करता है। प्रत्येक नवांश को २०० दो सौ कलाएँ होती हैं। उनके मध्यभाग १०० सौ कला पर ग्रहों का स्वमित्रादिनवांशप्राप्त बल पूर्ण होता है। और उस मध्यभाग से आगे पीछे अनुपात-सिद्ध नवांशबल होता है। और इसी तरह ग्रहों का स्वमित्रादि-क्षेत्रानुसार प्राप्त क्षेत्रबल भी क्षेत्र के मध्यभाग १५ पन्द्रह अंशों पर पूर्ण और उससे आगे पीछे त्रैराशिक के द्वारा अनुपातसिद्ध क्षेत्र-बल होता है।

उक्त बलों से उच्चबल के परिमाण और अवधिस्थान में भेद।

उच्चांशस्थे बलं पूर्णं नीचांशस्थे बलं दलम्।

त्रैराशिकवशाज्ज्ञेयमन्तरे तु बलं बुधैः ॥

प्रत्येक ग्रह का अपनी उच्चराशि में अपने परम उच्चांशों पर उच्चबल पूर्ण होता है और नीचराशि में अपने परम नीचांशों पर आधा उच्चबल होता है। परम नीचांश से आगे परम उच्चांश तक आधे से क्रमशः बढ़ता हुआ पूर्ण होता है और परम उच्चांशों

से क्रमशः घटते हुए परम नीचांश तक आधा उच्चबल होता है। आधा उच्चबल तो ग्रहों का सर्वदा रहता है, उससे कम कभी नहीं होता। यही अन्य बलों से उच्चबल में विशेषता है।

ग्रहों का क्षेत्रबल।

स्वक्षेत्रस्थे बलं पूर्णं पादोनं मित्रभे ग्रहे।
अर्द्धं समगृहे ज्ञेयं पादं शत्रुगृहे स्थिते॥

सौम्य वा क्रूर ग्रह का अपने क्षेत्र में पूर्ण, मित्रक्षेत्र में पौन, समक्षेत्र में आधा और शत्रुक्षेत्र में चौथाई बल होता है।

समीक्षा—देशादि स्वामि-निश्चायक प्रकरण में सभी शुभ वा पापग्रहों का क्षेत्रबल इसलिये तुल्य माना है कि, ग्रहों के वक्रोदयादि अन्य बल भी सब ग्रहों के समान ही माने गये हैं। यहां पर सर्वतोभद्रचक्र में कहे हुए शुभ-पाप ग्रहों के विपरीत क्षेत्रबल का उपयोग इस लिये नहीं किया जा सकता कि, वहां तो ग्रहों के क्रूर-सौम्य, वक्र-मार्ग और उच्च-नीच एवं स्वमित्रादिक्षेत्रस्थिति के आधार पर वेधफल कहा है। और इस अर्घकाण्ड में स्वयं स्वामी और उसके मित्रादिग्रहों के न्यूनाधिक वेधपाद और दृष्टिपादों के आधार पर फल-कथन किया गया है।

ग्रहों के स्वक्षेत्र का ज्ञान।

ग्रह—	सूर्य,	चंद्र,	मंगल,	बुध,	गुरु,	शुक्र,	शनि,	राहु,	केतु
स्वक्षेत्र—	सिंह	कर्क	मेष	मिथुन	धन	वृष	मकर	कन्या	मीन
			वृश्चिक	कन्या	मीन	तुला	कुम्भ।		

ग्रहों के मित्र-सम-शत्रुओं का ज्ञान ।

चन्द्राऽऽराऽऽर्या रवेरिष्टाः समः सौम्योऽपरौ रिपू ।
मित्रे चन्द्रस्य सूर्यज्ञौ समाः शेषा ग्रहा मताः ॥
आर्किशुक्रौ समौ ज्ञोऽरिः शेषा मित्राणि भूसुवः ॥
मित्रे सूर्यसितौ चान्द्रेश्चन्द्रोऽरिस्त्वपरे समाः ॥
सौम्यशुक्रौ गुरोः शत्रू शनिर्मध्योऽपरेऽन्यथा ।
शुक्रस्याऽऽर्किबुधौ मित्रे समार्यारावरी परौ ॥
बुधशुक्रौ शनेर्मित्रे सम आर्योऽरयोऽपरे ।
राहुकेत्वोः पुनर्मैत्री शत्रू चान्यान् ग्रहान् प्रति ॥

(नरपतिजयचर्या-ज्यौतिषाङ्क)

सूर्य के चन्द्र, मंगल और गुरु मित्र हैं। बुध सम है। शुक्र तथा शनि शत्रु हैं। चन्द्र के सूर्य और बुध मित्र हैं। शेष मंगल, गुरु, शुक्र और शनि सम हैं। चन्द्र का शत्रु कोई ग्रह नहीं है। मंगल के शनि और शुक्र सम हैं। बुध शत्रु है। शेष सूर्य, चन्द्र और गुरु मित्र हैं। बुध के सूर्य और शुक्र मित्र हैं। चन्द्रमा शत्रु है। शेष मंगल, गुरु और शनि सम हैं। गुरु के बुध और शुक्र शत्रु हैं। शनि सम है। शेष सूर्य, चन्द्र और मंगल मित्र हैं। शुक्र के शनि और बुध मित्र हैं। गुरु और मंगल सम हैं। शेष सूर्य और चन्द्रमा शत्रु हैं। शनि के बुध और शुक्र मित्र हैं। गुरु सम है। शेष सूर्य, चन्द्र और मंगल शत्रु हैं। राहु और केतु में परस्पर मित्रता है। अन्य ग्रहों के साथ इन दोनों की शत्रुता है। इनका सम ग्रह कोई नहीं है।

ग्रहमैत्री-चक्र

ग्रह	सू.	चं.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.	रा.	के.
मित्र	चं. मं. गु.	सू. बु.	सू. चं. गु.	सू. शु.	सू. चं. मं.	श. बु.	बु. शु.	के.	रा.
सम	बु.	मं. गु. शु. श.	शु. श.	मं. गु. श.	श.	मं. गु.	गु.		
शत्रु	शु. श. रा. के.	रा. के.	बु. रा. के.	चं. रा. के.	बु. शु. रा. के.	सू. चं. रा. के.	सू. चं. मं. रा. के.	सू. चं. मं. बु. गु. शु. श.	सू. चं. मं. बु. गु. शु. श.

ग्रहों के परम उच्चांश तथा नीचांश ।

ग्रह —	सूर्य	चन्द्र	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
उच्चराशि—	मेष	वृष	मकर	कन्या	कर्क	मीन	तुला	मिथुन	धन
परम उच्चांश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०	२०	२०
नीचराशि	तुला	वृश्चिक	कर्क	मीन	मकर	कन्या	मेष	धन	मिथुन
परन नीचांश	१०	३	२८	१५	५	२७	२०	२०	२०

निश्चित किये हुए देशादिस्वामियों का प्रयोजन !

एवं देशादिनाथानां ग्रहा वेधे व्यवस्थिताः ।
सुहृदः शत्रवो मध्याश्चिन्तनीयाः प्रयत्नतः ॥

पूर्वोक्त क्षेत्रादिबल-निर्णय की पद्धति से निश्चित किये हुए जो देशादि के स्वामी ग्रह हैं, उनके साथ वेध में व्यवस्थित अर्थात् देशादि के वर्णादिपञ्चक पर वेध करनेवाले अन्य ग्रहों का मित्र-सम-शत्रु में से कैसा संबंध है? यह बड़े ही ध्यान से देखा जाय। क्यों कि, वस्तुमात्र के मूल्यादिनिर्णय करने में वेधक ग्रहों का मित्रादिसंबंध भी एक मुख्य आधार है।

पूर्वोक्त 'देशेशा राहुमन्देज्याः' इत्यादि वचन के द्वारा बतलाए हुए देशादि के स्वामियों में यदि किसी समय कोई दो अथवा अधिक ग्रह क्षेत्रादि बल में समानबल के हो जांय तो, उस समय उन दो ग्रहों को या अधिक ग्रहों को स्वामी मान लेना होगा। किन्तु वेधक ग्रह उन स्वामियों में से यदि किसी का मित्र और किसी का शत्रु होगा, तो वह वेधक ग्रह उस समय उन स्वामियों का सम माना जायगा। यदि वेधक ग्रह उन स्वामियों का मित्र या शत्रु होगा, तो वह मित्र या शत्रु ही बना रहेगा। ऐसी दशा में उनके मित्रादि संबंध में कोई परिवर्तन न हो सकेगा। इसीलिये

'एवं देशादिनाथानां' इत्यादि मूल वचन में 'प्रयत्नतः' शब्द दे कर ग्रन्थकार ने मित्रादि संबंध में खूब सोच समझ कर निश्चय करने का गुप्त संकेत किया है।

शुभ ग्रह के वेधफल का परिमाण।

स्वमित्रसमशत्रूणां वेधे देशादिषु क्रमात्।
शुभग्रहः शुभं दत्ते चतुस्त्रिद्व्येकपादकैः॥

देशादि के वर्णादिपञ्चक पर स्वयं उनका स्वामी, स्वामी का मित्र, स्वामी का सम और स्वामी का शत्रु ग्रह वेध करता हो और वह वेधक ग्रह शुभग्रह हो तो क्रम से चार, तीन, दो और एक पाद शुभफल करता है।

पापग्रह के वेधफल का परिमाण।

स्वमित्रसमशत्रूणां वेधे देशादिषु क्रमात्।
दुष्टं दुष्टग्रहः कुर्यादेकद्वित्रिचतुष्पदैः॥

देशादि के वर्णादिपञ्चक पर स्वयं उनका स्वामी, स्वामी का मित्र, स्वामी का सम और स्वामी का शत्रु ग्रह वेध करता हो और वह वेधक ग्रह पापग्रह हो तो क्रम से एक, दो, तीन और चार पाद अपना अशुभ फल करता है।

पूर्वोक्त शुभाशुभ वेधफल की दृष्टि के द्वारा सार्थकता।

विध्यन् पूर्णदृशा पश्यँस्तत्पादेन फलं ग्रहः।
अविध्यँस्त्वन्यथा, ज्ञेयं फलं दृष्ट्यनुसारतः॥

देशादि के वर्णादि वेध्य को वेध करने वाला ग्रह जिस पाद से वेध करता हो और उस वेध्य की राशि को यदि पूर्णदृष्टि से

देखता हो, तभी उस पाद से वेधफल होता है। (इससे यह भी सिद्ध होता है कि, अल्पदृष्टि होगी तो वेध का फल भी कम होगा)। यदि वेध्य की राशि पर उस ग्रह की दृष्टि तो हो और वह वेध न करता हो तो (वेधाभाव में) दृष्टि का फल कुछ भी न होगा। क्योंकि, वेध होने पर ही उसका फल दृष्टि के अनुसार हुआ करता है।

कितनी ही पुस्तकों में :—

विद्धं पूर्णदृशा पश्यँस्तत्पादेन फलं ग्रहः।
विदधात्यन्यथा ज्ञेयं फलं दृष्ट्यनुसारतः ॥

ऐसा पाठ मिलता है। इसका अभिप्राय यह है कि, विद्ध वर्णादि को पूर्णदृष्टि से वेधक ग्रह देखता हो तो पूर्वकथित स्वमित्रादि संबंध से जितने पाद वेध होगा, वह पूर्ण होगा। अन्यथा पूर्णदृष्टि के अभाव में जितनी कम दृष्टि होगी उसके अनुसार पूर्वोक्त रीति से पूर्ण, पादोन आदि जो वेध प्राप्त होगा, वह भी कम होगा।

समीक्षा—पहिले पाठ में यह विशेषता है कि, वेधाभाव में दृष्टि का होना भी निरर्थक सिद्ध हो जाता है।

इस सर्वतोभद्रचक्र में वर्ण को फलकथन का मूल आधार माना गया है। क्योंकि, वस्तुमात्र के नाम के पहिले वर्ण से ही वर्णादिपञ्चक तैयार किया जाता है। वह वर्ण जब किसी स्वर से युक्त होता है, तब नवांश-स्वरूप हो जाता है। नरपतिजयचर्या के 'अंशचक्र' में वह किसी नक्षत्र के किसी न किसी चरण में पाया जाता है। उक्त अंशचक्र में जब उस नवांश को किसी ग्रह का वेध होता है, तब उस वेध्य नवांश की राशि पर नवांश-संबंधी राशिमण्डल में स्थित उस वेधक ग्रह की दृष्टि हो, तो वह

वेध भी फलदायक होता है। यही बात ग्रन्थकार ने आगे की कारिका में कही है कि :—

वर्णादिस्वरराशीनां मेषाद्ये राशिमण्डले।

ग्रहदृष्टिवशात्सोऽपि वेधो वर्णादिके मतः॥

वर्ण है आदि में जिनके ऐसे स्वरों की राशि (नवांशराशि) संबंधी मेषादिराशिमण्डल (नवांश कुण्डली) में स्थित ग्रह की दृष्टि के वश से नवांशस्थ वर्णादि पर होने वाला वेध भी ग्राह्य एवं फलप्रद होता है।

नवांश-वेध-ज्ञान।

सर्वतोभद्रचक्र में पूर्वादि चारों दिशाओं में सात सात नक्षत्र हैं। प्रत्येक नक्षत्र में चार चरण होते हैं। जो ग्रह जिस नक्षत्र के जिस चरण में स्थित हो, वहां से अपने सामनेवाले नक्षत्र के सामनेवाले चरण को वेध करता है। जैसे–कृत्तिका नक्षत्र के पहिले चरण में बैठा हुआ सौम्य वा क्रूर ग्रह अपने सामनेवाले श्रवण नक्षत्र के चौथे चरण के वर्ण तथा स्वर अथवा श्रवणनक्षत्र के चौथे चरण में स्थित ग्रह को वेध करता है। इसी प्रकार कृत्तिका के दूसरे चरण में बैठा हुआ ग्रह श्रवणनक्षत्र के तीसरे चरण के वर्णादि को वेध करता है। तीसरे चरण में स्थित ग्रह सामने वाले नक्षत्र के दूसरे चरण को और चौथे चरण में बैठा हुआ ग्रह सामनेवाले नक्षत्र के प्रथम चरण के वर्णादि को वेध करता है। यह नवांशवेध तभी फलदायक होता है, जब कि नवांश-संबंधी राशिमण्डल में वेधक ग्रह की वेध्य नवांश की राशि पर दृष्टि हो। नवांशवेध में केवल संमुख वेध ही होता है—वाम-दक्षिणवेध नहीं होता। नवांशवेध में भले ही वेधक ग्रह वक्री, शीघ्र अथवा मध्यचारी क्यों न हो, उसका संमुख वेध ही होता है।

यदि किसी नक्षत्र के किसी चरण में दो तीन या अधिक ग्रह विद्यमान हों, तो ऐसी दशा में जो ग्रह उन सब में विजयी होगा, उसी ग्रह के वेध का फल होगा—अन्य (पराजित) ग्रहों का नहीं। जय-पराजय का ज्ञान उन ग्रहों के शर और क्रान्ति से हुआ करता है। जो ग्रह उत्तर क्रान्ति वा शर में होता है; वह दक्षिणक्रान्ति वा शर वाले ग्रह से विजयी माना जाता है। यदि दोनों ग्रहों की एक ही क्रान्ति (उत्तर वा दक्षिण) अथवा शर हो तो ऐसी स्थिति में उत्तरक्रान्ति वा शर में जो अधिकांशी ग्रह होता है, वह विजयी होता है और दक्षिणक्रान्ति वा शर की एकता में न्यूनांशी ग्रह विजयी हुआ करता है। इस विषय में बृहत्संहिता आदि प्राचीन आर्षग्रथों में विशेष व्यवस्था देखने को मिलेगी। विस्तार-भय से यहां नहीं लिख रहे हैं।

समीक्षा—यह नवांशवेध भी पूर्वोक्त 'घ ङ छ' आदि वर्णों के वेध की तरह वाम, संमुख और दक्षिण, इन तीनों मूलपरिभाषानुसारी वेध से भिन्न प्रकार का नवांश– वेध है। इस वेध का भी फलकल्पना में अवश्य ध्यान रखना चाहिये।

शास्त्रदृष्टि से मेषादि प्रत्येक राशि में सवा दो नक्षत्र, प्रत्येक नक्षत्र के चरणोंमें अकारादि पांच स्वरों से युक्त वर्णों के विद्यमान होने से, वर्णादि की राशि पर जिस वेधक ग्रह की दृष्टि होगी, उस ग्रह की तद्राशिगत नक्षत्र, वर्ण और स्वरों पर भी दृष्टि मानी जा सकती है; किन्तु देशादि के वर्णादिपञ्चक में तिथि का ग्रहण भी किया गया है और तिथि का किसी भी राशि में होना कहीं भी शास्त्रकारों ने नहीं बतलाया है, ऐसी दशा में तिथि के ऊपर वेधक ग्रह की दृष्टि किस प्रकार मानी जाय ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं कि:—

स्वस्ववर्णाः स्वचक्रोक्तास्तिथिवेधेन पीड़िताः ।
तिथिवर्णेषु यो राशिस्तद्दृष्टौ तन्निरीक्षणम् ॥

स्वचक्रोक्त (तिथि-वर्णस्वरचक्र में बतलाये हुए) तिथियों के जो अपने अपने (निज) वर्ण हैं, वे वर्ण तिथि को वेध होने से पीड़ित अर्थात् विद्ध होते हैं। तात्पर्य यह कि, तिथि को वेध होने पर तिथि के वर्ण को वेध माना जाता है। और तिथि के वर्ण की जो राशि हो, उस पर वेधक ग्रह की दृष्टि हो, तो वह दृष्टि तिथि पर भी मानी जाती है।

शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष में तिथिवेध का फलभेद ।

अशुभो वा शुभो वाऽपि शुक्ले विध्यँस्तिथिं ग्रहः ।
सर्वं निजफलं दत्ते कृष्णपक्षे तु तद् दलम् ॥

तिथि को वेध करनेवाला अशुभ वा शुभ ग्रह शुक्लपक्ष में अपना सम्पूर्ण फल करता है और कृष्णपक्ष में आधा।

समीक्षा—उक्त वाक्य में सामान्यतया तिथिवेध का फल-कथन किया गया है। इसलिये देश, काल और पण्य के वर्णादि-पञ्चक में जो तिथि हो, उसका शुक्ल-कृष्ण पक्ष के भेद से सम्पूर्ण और आधा वेधफल ग्रहण करना चाहिये।

स्थितिजवेध में दृष्टि की व्यवस्था ।

खेटकस्यांशके ज्ञेया पूर्णा दृष्टिः सदा बुधैः ।
दृष्टिहीने पुनर्वेधे न स्यात् किञ्चिच्छुभाशुभम् ॥

ग्रह की स्वाधिष्ठित नवांश पर विद्वानों को सर्वदा पूर्णदृष्टि जानना चाहिये। क्योंकि, दृष्टिहीन वेध का कुछ भी शुभाशुभ फल नहीं होता।

समीक्षा—कुछ विद्वानों ने इस वचन का ऐसा अर्थ किया है

कि, ग्रह की अपने नवांश पर राशिमण्डल में भले ही एकपादादि दृष्टि क्यों न हो; किन्तु वहां पर सदा पूर्णदृष्टि ही मानना चाहिये। परन्तु इस अर्थ में यह दूषण उपस्थित होता है कि, राहु—केतु का कोई भी अपना नवांश न होने से वेधफल कुछ का कुछ होगा। अतएव वेधक ग्रह जिस नवांश में स्थित होता है, उस नवांशराशि पर यद्यपि दृष्टि नहीं हुआ करती तथापि वहां सर्वदा पूर्णदृष्टि ही मानना और फल का निश्चय करना चाहिये; यही समुचित अर्थ प्रतीत होता है।

मूल्य-निर्णायक प्रकरण की पूर्ति करते हैं कि:—

इत्येवं दृष्टिभेदेन निर्दिष्टं सकलं फलम्।
वर्णादिपञ्चके विद्धे ग्रहो दद्यो शुभाशुभम्॥

देशादि के वर्णादिपञ्चक पर वेध होने पर शुभाशुभ ग्रह जैसा अपना शुभाशुभ फल करता है, वैसा सम्पूर्ण फल दृष्टिभेद के द्वारा ऊपर दिखाया गया है।

वेध और दृष्टि के द्वारा शुभाशुभ ग्रह के फल-विंशोपक।

सौम्यः पूर्णदृशा पश्यन् विध्यन् वर्णादिपञ्चकम्।
फलविंशोपकान् पञ्च क्रूरस्तु चतुरो दिशेत्॥

बुध, गुरु, शुक्र और चन्द्र; यह चार ग्रह सौम्य हैं। इस अर्घकाण्ड में क्रूरयुक्त बुध और क्षीणचन्द्र क्रूर कभी नहीं होते। क्योंकि, शुभग्रह-विंशोपक की पूर्णता भी २० है। और क्रूरग्रह-विंशोपक की पूर्णता भी २० ही है। अन्यथा जब देखो तब क्रूर-विंशोपक ही शेष रहा करेंगे और शुभ कोटि तथा अशुभ कोटि बराबर न हो सकेगी। अतएव एक सौम्य ग्रह जब देशादि के वर्ण आदि पाँचों वेध्यों को पूर्णवेध एवं पूर्णदृष्टि करता है, तब वह पाँच फलविंशोपक देता है। क्यों कि, शुभकोटि के सम्पूर्ण

फल-विंशोपक २० हैं और सौम्यग्रह ४ हैं। अतएव २० में ४ का भाग देने से एक सौम्यग्रह को ५ फलविंशोपक मिलते हैं। इसी प्रकार एक क्रूरग्रह जब देशादि के वर्ण आदि पाँचों वेध्यों को पूर्णवेध और पूर्णदृष्टि करता है, तब वह चार फलविंशोपक देता है। क्योंकि, पापकोटि के संपूर्ण फलविंशोपक भी २० ही हैं; किन्तु क्रूरग्रह पाँच हैं। इसलिये २० में ५ का भाग देने से एक क्रूर ग्रह को ४ फलविंशोपक मिलते हैं।

पूर्णवेध और पूर्णदृष्टि के अभाव में फलविशोपकों के जानने की युक्ति बतलाते हैं कि :—

वर्णादिपञ्चके यावत्स्थानवेधे च यावती।
दृष्टिस्तदनुमानेन वाच्या विंशोपका बुधैः ॥

देशादि के वर्णादिपञ्चक पर वेधक ग्रहोंका स्वमित्रादि स्थानों से जितने पाद वेध हो, उस वेध के फलविंशोपकों की कल्पना विद्वानों को चाहिये कि, विद्ध वर्णादि की राशिपर जितने पाद दृष्टि हो, उस दृष्टि के अनुमान से करें। अर्थात् उस वेध का फल दृष्टि के आधार पर निश्चित करें।

स्वमित्रादिस्थानों से ग्रहों का पूर्ण, पादोन आदि पादात्मक वेध तो पूर्वोक्त 'स्वमित्रसमशत्रूणां' इत्यादि वचनों द्वारा कहा जा चुका है। दृष्टि के पादों की व्यवस्था भी नरपति आचार्य ने अपने ज्यौतिषाङ्क में इस प्रकार की है कि :—

कर्माग्नी पञ्चनन्दौ च गजाब्धी सप्तमं तथा।
पादवृद्धया निरीक्षन्ते ग्रहा लग्नानि सर्वदा ॥

खतृतीयं त्रिकोणञ्च चतुरस्रं यथाक्रमम् ।
सर्वदृष्ट्या प्रपश्यन्ति ग्रहा मन्दार्यभूसुताः ॥

सब ग्रहों की तीसरे और दसवें स्थान पर एक पाद, पांचवें और नवें स्थान पर दो पाद, चौथे तथा आठवें स्थान पर तीन पाद और सातवें स्थान पर चार पाद (पूर्ण) दृष्टि होती है। किन्तु शनि, गुरु और मंगल की दृष्टि के विषय में इतना विशेष भेद है कि, शनि तीसरे और दसवें स्थान पर, गुरु पांचवें और नव स्थान पर और मंगल चौथे और आठवें स्थान पर विशेषरूप से पूर्णदृष्टि करता है।

समीक्षा—सारांश यह है कि, ग्रहों के वेध का फल उनकी दृष्टि के अनुसार ही हुआ करता है। और ऊपर कहा हुआ विंशोपकानयन-प्रकार एक ग्रह का है। यदि वेधक ग्रहों की संख्या एक से अधिक हो, तो वहां पर उन ग्रहों के विंशोपक भी पूर्वोक्त रीति से पृथक् पृथक् बनाना चाहिये। सर्वत्र एक वेध्य में विंशोपक का मान एक पञ्चमांश होगा; यह ध्यानपूर्वक देखना चाहिये।

यहां तक फलविंशोपकों के निर्माण करने का विधान बतलाया है। अब इसके आगे का कर्तव्य बतलाते हैं कि :—

एवं विंशोपका येऽत्र सम्भवन्ति शुभाशुभाः ।
ते शुभा एकतः स्थाप्या अशुभास्त्वन्यतः पृथक् ॥
शुभाशुभस्वरूपस्य राशियुग्मस्य मध्यतः ।
बह्वल्पयोरन्तरं तच्छेषं ज्ञेयं शुभाशुभम् ॥

इष्टकाल पर पूर्वोक्त प्रकार से देश, काल और पण्य के वर्णापञ्चक पर शुभाशुभ ग्रहों के वेध और उनकी दृष्टि के अनुसार

जो शुभ वा अशुभ फलविंशोपक तैयार हों, उनमें से शुभ विंशोपकों को एक तरफ और अशुभ विंशोपकों को दूसरी तरफ जुदा जुदा रक्खे। फिर उन शुभाशुभ विंशोपकों का जुदा जुदा योग करे। बाद में, दोनों तरफ के योगों में से जिधर का योग अधिक हो, उसमें से जिधर के फलविंशोपकों का योग कम हो, उसको घटा देने से जिधर के जितने फलविंशोपक शेष बचें, तदनुसार वस्तु का शुभाशुभ फल समझना चाहिये। यदि शुभ ग्रहों के विंशोपक शेष बचें तो शुभफल और अशुभ ग्रहों के विंशोपक शेष बचें तो अशुभ फल जानना चाहिये।

घटावढ़ी जानने की वास्तविक युक्ति।

वर्तमानार्घविंशांशकल्पना तेषु च क्रमात्।
वर्तमानार्घके देयाः पात्याश्चैवं शुभाशुभाः॥

जिस तरह ऊपर कही हुई रीति से वर्ष, मास, दिनात्मक जिस समय की वस्तु की तेजी मंदी जानने के लिये, देश-काल-पण्य के वर्णादिपञ्चकों पर ग्रहों के वेध और दृष्टि के अनुसार शुभाशुभ फलविंशोपकों का शेष निकाला है, उसी तरह वर्तमान समय (पिछले वंद भाव होने के समय) पर भी देशादि के वर्णादिपञ्चक पर ग्रहों के वेध और दृष्टि के अनुसार विंशांश अर्थात् विंशोपकों की कल्पना (निर्माण) करे। बाद में इन दोनों शेष विंशोपकों का अन्तर करे। यदि प्रथम इष्टकाल के शुभ फलविंशोपकों से द्वितीय इष्टकाल के शुभ फलविंशोपक अधिक हों तो वे शुभसंज्ञक होते हैं और वे यदि न्यून हों तो अशुभसंज्ञक होते हैं। इसी प्रकार प्रथम इष्टकालके अशुभ फलविंशोपकों से द्वितीय इष्टकाल के अशुभ फलविंशोपक अधिक हों, तो वे अशुभसंज्ञक और न्यून हों तो वे शुभ-संज्ञक होते हैं। प्रथम

इष्टकाल के शेष फलविंशोपकों से द्वितीय इष्टकाल के शुभ वा अशुभ शेष फलविंशोपक जितने अधिक वा न्यून हों, तदनुसार वस्तु के परिमाण वा मूल्य में उन शेष बचे हुए फलविंशोपकों के हिसाब से घटाना या बढ़ाना चाहिये।

समीक्षा—अधिकांश विद्वानों ने इस कारिका का सीधा-साधा यह अर्थ किया है कि, जिस वस्तु का जिस समय का निर्णय करना हो, तो उस वस्तु के वर्तमान (वर्ष, मास तथा दिन के प्रवेश काल) में जो भाव हो, उसके बीस भागकी कल्पना करे। उनमें से एक भाग को एक विंशोपक की बराबर मान कर, पूर्वोक्त क्रम से प्राप्त शेष विंशोपक यदि शुभ ग्रह के हों, तो उनको जोड़ देना और क्रूर ग्रहों के हों तो उनको घटा देना। वस्तु के विंशोपक बढ़ें तो वस्तु की वृद्धि और मूल्य की हानि होती है। और वस्तु के विंशोपक घटें तो वस्तु की हानि और मूल्य की वृद्धि होती है। परन्तु इस रीति से निर्माण किये हुए विंशोपक यदि शुभ शेष बचेंगे तब किसी वस्तु का वर्तमान मूल्य २००) रु० होगा तो पांच आने से कम की मंदी और अशुभ बचेंगे तो ।) चार आने से कम की तेजी कभी न मिलेगी। ऐसे विंशोपक किसी तरह भी शेष न बचेंगे, जिन से आना दो आना की तेजीमंदी भी सिद्ध हो सके। इस लिये ऊपर कही हुई हमारी युक्ति ही ठीक है। उसमें यह दूषण नहीं होता।

सर्वतोभद्रचक्र

पूर्व दिशा

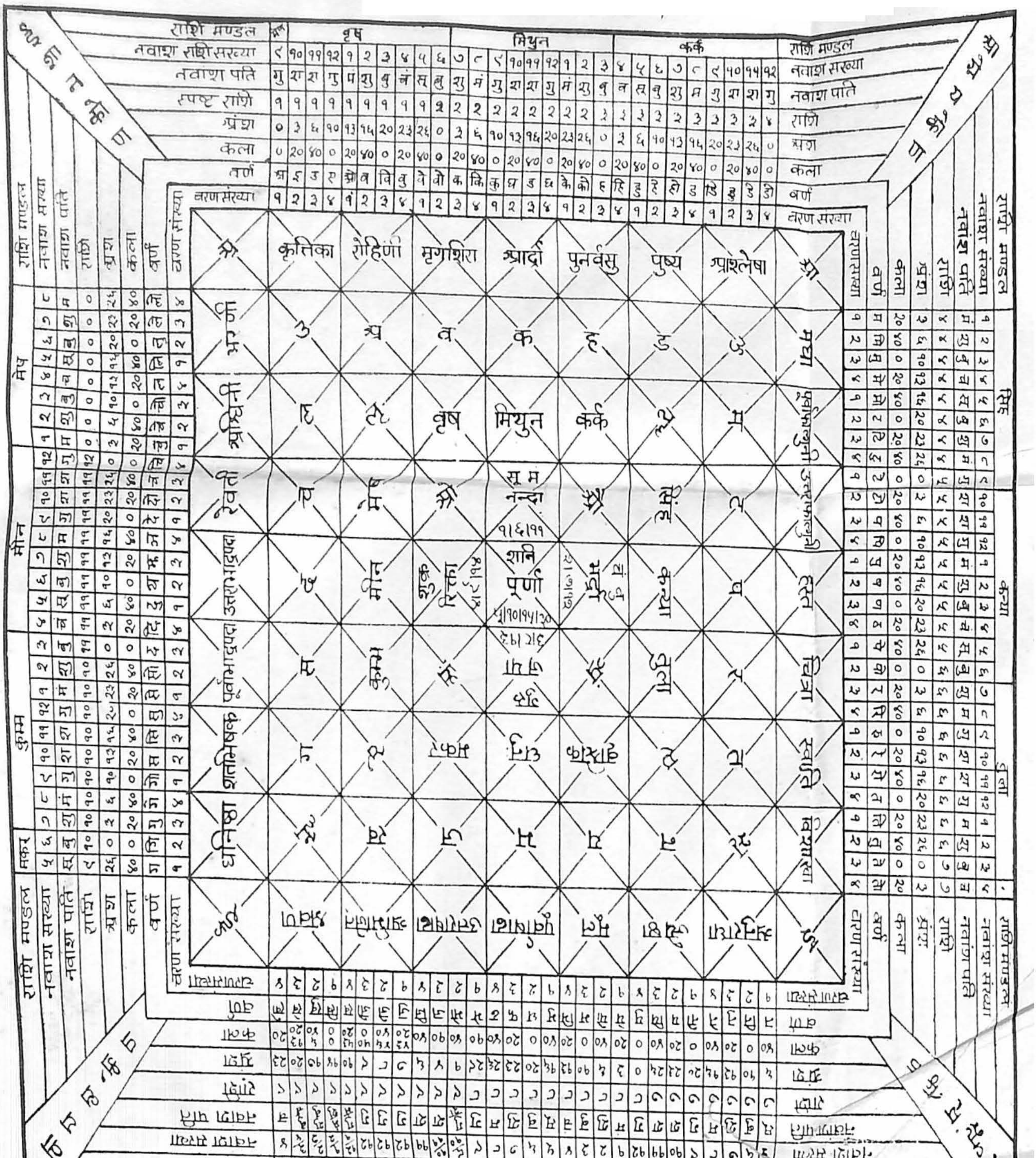

परिशिष्ट

फलादेश के लिये पञ्चाङ्ग कैसा हो ?

फलकथन के लिये—छोटे से छोटे और बड़े से बड़े काम के लिये—'पञ्चाङ्ग' ही सबसे उत्तम और मुख्य साधन है। पञ्चाङ्ग के निर्माण करने में इस समय दो पद्धतियां प्रचलित हैं। एक 'निरयन' और दूसरी 'सायन'। भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र निरयनपद्धति का ही प्रचार है और पाश्चात्य देशों में अबाधरूप से सायनपद्धति का। 'सायन' किंवा 'निरयन' किसी भी पद्धति से पञ्चाङ्ग बनाया जाय, किन्तु उसका गणितविधान कैसा हो, इस विषय में ज्योतिश्शास्त्रप्रवर्तक महर्षियों तथा उच्चकोटि के अनुभवी विद्वानों का एकमुख यही कहना है कि—"वही गणित सच्चा और फल की सत्यता को प्रमाणित करनेवाला होता है, जिसका अकाशस्थ ग्रह, नक्षत्र आदि से ठीकठीक मिलान हो जाय और उसके आधार पर निश्चित किया हुआ फल का समय भी पल-विपल तक सही हो।" अतएव यह निर्विवाद है कि,

फलादेश के लिये विविध यन्त्रों द्वारा सिद्ध स्पष्ट ग्रहगणित को ही काम में लाना चाहिये ! यह काम उच्चकोटि की 'वेधशाला' के बिना हो नहीं सकता। भारतीय वेधशालाओं की अपेक्षा ग्रीनविच की वेधशाला इस समय सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। उसके आधार पर सायनपद्धति से बनाये हुए पञ्चाङ्गों में 'राफाइल' के पञ्चाङ्ग को हम फलादेश के लिए अधिक उपयोगी समझते हैं। क्योंकि, उसमें ग्रहों का दैनिक स्पष्टीकरण, ग्रहों के राशिभोग, शरभोग तथा क्रान्तिभोग की गति एवं ग्रहों के शरपरिवर्तन आदि निर्णयोपयोगी अनेक आवश्यक साधनों का समावेश है। परन्तु जब तक वैसा निर्णयोपयोगी कोई भारतीय पञ्चाङ्ग प्रकाशित न हो, तबतक राफाइल की 'एफीमरी' (अंग्रेजी पंचाङ्ग) को काम में लाने के लिये, हम अपने भारतवासी फलवक्ताओं से साग्रह अनुरोध करते हैं, जिससे उन्हें फलकथन में अधिकाधिक सफलता प्राप्त हो। जो लोग अंग्रेजी नहीं जानते, वे काशी के दिग्दिगन्तविख्यातकीर्ति महामहोपाध्याय श्रीयुत पण्डित प्रवर बापूदेवजी शास्त्री सी० आई० के पञ्चाङ्ग, या कलकत्ता की 'विशुद्धसिद्धान्तपञ्जिका' अथवा 'सन्देश' और 'जन्मभूमि' नाम के गुजराती पञ्चाङ्गों को काम में लावें। क्योंकि, व्यापारसम्बन्धी अत्यन्त सूक्ष्म और जिम्मेदारी के काम के लिये उक्त पञ्चाङ्गों का गणितविधान विशेष विश्वसनीय सिद्ध हो चुका है।

—:०:—

क्षेत्रबल-सारिणी

अंशफल

क्षेत्र अंश	स्व पूर्ण '	मित्र तीनपाद '	सम दोपाद '	शत्रु एकपाद '	क्षेत्र अंश	स्व पूर्ण '	मित्र तीनपाद '	सम दोपाद '	शत्रु एकपाद '
१	४	३	२	१	१६	५६	४२	२८	१४
२	८	६	४	२	१७	५२	३९	२६	१३
३	१२	९	६	३	१८	४८	३६	२४	१२
४	१६	१२	८	४	१९	४४	३३	२२	११
५	२०	१५	१०	५	२०	४०	३०	२०	१०
६	२४	१८	१२	६	२१	३६	२७	१८	९
७	२८	२१	१४	७	२२	३२	२४	१६	८
८	३२	२४	१६	८	२३	२८	२१	१४	७
९	३६	२७	१८	९	२४	२४	१८	१२	६
१०	४०	३०	२०	१०	२५	२०	१५	१०	५
११	४४	३३	२२	११	२६	१६	१२	८	४
१२	४८	३६	२४	१२	२७	१२	९	६	३
१३	५२	३९	२६	१३	२८	८	६	४	२
१४	५६	४२	२८	१४	२९	४	३	२	१
१५	६०	४५	३०	१५	३०	०	०	०	०

बलसाधन में ६० कला को सर्वत्र पूर्ण (१) मानिये।

—:०:—

क्षेत्रबल-सारिणी

कलाफल

क्षेत्र कला	स्व पूर्ण	मित्र तीनपाद	सम दोपाद	शत्रु एकपाद
	,,	,,	,,	,,
१	४	३	२	१
२	८	६	४	२
३	१२	९	६	३
४	१६	१२	८	४
५	२०	१५	१०	५
६	२४	१८	१२	६
७	२८	२१	१४	७
८	३२	२४	१६	८
९	३६	२७	१८	९
१०	४०	३०	२०	१०
११	४४	३३	२२	११
१२	४८	३६	२४	१२
१३	५२	३९	२६	१३
१४	५६	४२	२८	१४
	, ,,			
१५	१।०	४५	३०	१५
१६	१।४	४८	३२	१६
१७	१।८	५१	३४	१७
१८	१।१२	५४	३६	१८
१९	१।१६	५७	३८	१९

क्षेत्र कला	स्व पूर्ण	मित्र तीनपाद	सम दोपाद	शत्रु एकपाद
	, ,,	, ,,	,,	,,
२०	१।२०	१।०	४०	२०
२१	१।२४	१।३	४२	२१
२२	१।२८	१।६	४४	२२
२३	१।३२	१।९	४६	२३
२४	१।३६	१।१२	४८	२४
२५	१।४०	१।१५	५०	२५
२६	१।४४	१।१८	५२	२६
२७	१।४८	१।२१	५४	२७
२८	१।५२	१।२४	५६	२८
२९	१।५६	१।२७	५८	२९
			, ,,	
३०	२।०	१।३०	१।०	३०
३१	२।४	१।३३	१।२	३१
३२	२।८	१।३६	१।४	३२
३३	२।१२	१।३९	१।६	३३
३४	२।१६	१।४२	१।८	३४
३५	२।२०	१।४५	१।१०	३५
३६	२।२४	१।४८	१।१२	३६
३७	२।२८	१।५१	१।१४	३७
३८	२।३२	१।५४	१।१६	३८

क्षेत्रबल-सारिणी

कलाफल

क्षेत्र कला	स्व पूर्ण ' "	मित्र तीनपाद ' "	सम दोपाद ' "	शत्रु एकपाद "	क्षेत्र कला	स्व पूर्ण ' "	मित्र तीनपाद ' "	सम दोपाद ' "	शत्रु एकपाद ' "
३९	२।३६	१।५७	१।१८	३९	५१	३।२४	२।३३	१।४२	५१
४०	२।४०	२।०	१।२०	४०	५२	३।२८	२।३६	१।४४	५२
४१	२।४४	२।३	१।२२	४१	५३	३।३२	२।३९	१।४६	५३
४२	२।४८	२।६	१।२४	४२	५४	३।३६	२।४२	१।४८	५४
४३	२।५२	२।९	१।२६	४३	५५	३।४०	२।४५	१।५०	५५
४४	२।५६	२।१२	१।२८	४४	५६	३।४४	२।४८	१।५२	५६
४५	३।०	२।१५	१।३०	४५	५७	३।४८	२।५१	१।५४	५७
४६	३।४	२।१८	१।३२	४६	५८	३।५२	२।५४	१।५६	५८
४७	३।८	२।२१	१।३४	४७	५९	३।५६	२।५७	१।५८	५९
४८	३।१२	२।२४	१।३६	४८	६०	४।०	३।०	२।०	१।०
४९	३।१६	२।२७	१।३८	४९					
५०	३।२०	२।३०	१।४०	५०					

इस क्षेत्रबल की अंश-फल-सारिणी में राशि के आरम्भ से प्रत्येक अंश का स्वमित्रादि क्षेत्रानुसार पूर्ण पादोन आदि जो कलात्मक फल दिया है, वह अंश की समाप्ति का है। १५ अंश तक विद्यमान अंश के फल से आगे को कला-विकला के फल को जो कला-सारिणी में दिया गया है, विद्यमान अंश के फल में जोड़ना होगा। और १५ अंश से यदि अधिक अंश हों, तो अंशफल तो वही रहेगा, जो अंश-फल-सारिणी में दिया हुआ है। किन्तु आगे की कला-विकला के फल को १५ से अधिक अंश के फल में से घटाना होगा।

विकला के फलसाधनार्थ यही कलाफलसारिणी काम में आती है। अन्तर केवल इतना ही है कि, इस कलाफलसारिणी में दिये हुए विकलात्मक फल को प्रतिविकलात्मक समझें।

उदाहरण;—

जैसे—किसी इष्टकाल पर राश्यादि स्पष्ट सूर्य ४। ७। २५। ५२ है तो वह सूर्य स्वक्षेत्र में होने के कारण पूर्ण बल पाता है। उक्त सारिणी द्वारा इस प्रकार क्षेत्रबल प्राप्त होगा :—

	कला	विकला	प्रति विकला
अंशफल	२८	०	०
कलाफल	१	४०	०
विकलाफल	०	०	३।२८
योग	२९	४०	३।२८

यह सूर्य का उस समय क्षेत्रबल हुआ-जो आधे से कुछ ही कम है।

क्षेत्रबल साधन की सुगम रीति।

प्रत्येक ग्रह का शत्रु क्षेत्र में १५ अंश तक जो अंश, कला, विकला हों, वही कलादि क्षेत्रबल होता है।

समक्षेत्र में १५ अंश तक जो अंश कला विकला हों, उनको दुगुना करने से जो कलादि फल प्राप्त हो, वह क्षेत्रबल होता है।

मित्रक्षेत्र में १५ अंश तक जो अंश कला विकला हों, उनको तिगुना करने से जो कलादि फल प्राप्त हो, वह क्षेत्रबल होता है।

स्वक्षेत्र में १५ अंश तक जो अंश कला विकला हों उनको चौगुना करने से जो कलादि फल उपलब्ध हो, वह क्षेत्रबल होता है,

यदि १५ अंश से अधिकांशी ग्रह हो तो ३० अंशों में से घटाने पर जो शेष अंश बचें, उनका क्षेत्रबल पूर्वोक्त रीति से स्वमित्रादि क्षेत्र के अनुसार निर्माण करें।

नवांशबलसारिणी

कलाफल

नवांश	स्व	मित्र	सम	शत्रु
कला	पूर्ण	तीनपाद	दोपाद	एकपाद
	' "	' "	' "	' "
१	०।३६	०।२७	०।१८	०।९
२	१।१२	०।५४	०।३६	०।१८
३	१।४८	१।२१	०।५४	०।२७
४	२।२४	१।४८	१।१२	०।३६
५	३।०	२।१५	१।३०	०।४५
६	३।३६	२।४२	१।४८	०।५४
७	४।१२	३।९	२।६	१।३
८	४।४८	३।३६	२।२४	१।१२
९	५।२४	४।३	२।४२	१।२१
१०	६।०	४।३०	३।०	१।३०
११	६।३६	४।५७	३।१८	१।३९
१२	७।१२	५।२४	३।३६	१।४८
१३	७।४८	५।५१	३।५४	१।५७
१४	८।२४	६।१८	४।१२	२।६
१५	९।०	६।४५	४।३०	२।१५
१६	९।३६	७।१२	४।४८	२।२४
१७	१०।१२	७।३९	५।६	२।३३
१८	१०।४८	८।६	५।२४	२।४२
१९	११।२४	८।३३	५।४२	२।५१
२०	१२।०	९।०	६।०	३।०
२१	१२।३६	९।२७	६।१८	३।९
२२	१३।१२	९।५४	६।३६	३।१८
२३	१३।४८	१०।२१	६।५४	३।२७
२४	१४।२४	१०।४८	७।१२	३।३६
२५	१५।०	११।१५	७।३०	३।४५

नवांश कला	स्व पूर्ण , "	मित्र तीनपाद , "	सम दोपाद , "	शत्रु एकपाद , "
२६	१५।३६	११।४२	७।४८	३।५४
२७	१६।१२	१२।६	८।६	४।३
२८	१६।४८	१२।३६	८।२४	४।१२
२९	१७।२४	१३।३	८।४२	४।२१
३०	१८ ०	१३।३०	९।०	४।३०
३१	१८।३६	१३।५७	९।१८	४।३९
३२	१९।१२	१४।२४	९।३६	४।४८
३३	१९।४८	१४।५१	९।५४	४।५७
३४	२०।२४	१५।१८	१०।१२	५।६
३५	२१।०	१५।४५	१०।३०	५।१५
३६	२१।३६	१६।१२	१०।४८	५।२४
३७	२२।१२	१६।३९	११।६	५।३३
३८	२२।४८	१७।६	११।२४	५।४२
३९	२३।२४	१७।३३	११।४२	५।५१
४०	२४।०	१८।०	१२।०	६।०
४१	२४।३६	१८।२७	१२।१८	६।९
४२	२५।१२	१८।५४	१२।३६	६।१८
४३	२५।४८	१९।२१	१२।५४	६।२७
४४	२६।२४	१९।४८	१३।१२	६।३६
४५	२७।०	२०।१५	१३।३०	६।४५
४६	२७।३६	२०।४२	१३।४८	६।५४
४७	२८।१२	२१।९	१४।६	७।३
४८	२८।४८	२१।३६	१४।२४	७।१२
४९	२९।२४	२२।३	१४।४२	७।२१
५०	३०।०	२२।३०	१५।०	७।३०

नवांशबलसारिणी

कलाफल

नवांश	स्व	मित्र	सम	शत्रु
कला	पूर्ण	तीनपाद	दोपाद	एकपाद
	' "	' "	' "	' "
५१	३०।३६	२२।५७	१५।१८	७।३९
५२	३१।१२	२३।२४	१५।३६	७।४८
५३	३१।४८	२३।५१	१५।५४	७।५७
५४	३२।२४	२४।१८	१६।१२	८।६
५५	३३।०	२४।४५	१६।३०	८।१५
५६	३३।३६	२५।१२	१६।४८	८।२४
५७	३४।१२	२५।३९	१७।६	८।३३
५८	३४।४८	२६।६	१७।२४	८।४२
५९	३५।२४	२६।३३	१७।४२	८।५१
६०	३६।०	२७।०	१८।०	९।०
६१	३६।३६	२७।२७	१८।१८	९।९
६२	३७।१२	२७।५४	१८।३६	९।१८
६३	३७।४८	२८।२१	१८।५४	९।२७
६४	३८।२४	२८।४८	१९।१२	९।३६
६५	३९।०	२९।१५	१९।३०	९।४५
६६	३९।३६	२९।४२	१९।४८	९।५४
६७	४०।१२	३०।९	२०।६	१०।३
६८	४०।४८	३०।३६	२०।२४	१०।१२
६९	४१।२४	३१।३	२०।४२	१०।२१
७०	४२।०	३१।३०	२१।०	१०।३०
७१	४२।३६	३१।५७	२१।१८	१०।३९
७२	४३।१२	३२।२४	२१।३६	१०।४८
७३	४३।४८	३२।५१	२१।५४	१०।५७
७४	४४।२४	३३।१८	२२।१२	११।६
७५	४५।०	३३।४५	२२।३०	११।१५

नवांश कला	स्व पूर्ण , "	मित्र तीनपाद , "	सम दोपाद , "	शत्रु एकपाद , "
७६	४५।३६	३४।१२	२२।४८	११।२४
७७	४६।१२	३४।३९	२३।६	११।३३
७८	४६।४८	३५।६	२३ २४	११।४२
७९	४७।२४	३५।३३	२३।४२	११।५१
८०	४८।०	३६।०	२४।०	१२।०
८१	४८।३६	३६।२७	२४।१८	१२।९
८२	४९।१२	३६।५४	२४।३६	१२।१८
८३	४९।४८	३७।२१	२४।५४	१२।२७
८४	५०।२४	३७।४८	२५।१२	१२।३६
८५	५१।०	३८।१५	२५।३०	१२।४५
८६	५१।३६	३८।४२	२५।४८	१२।५४
८७	५२।१२	३९।९	२६।६	१३।३
८८	५२।४८	३९।३६	२६।२४	१३।१२
८९	५३।२४	४०।३	२६।४२	१३।२१
९०	५४।०	४०।३०	२७।०	१३।३०
९१	५४।३६	४०।५७	२७।१८	१३।३९
९२	५५।१२	४१।२४	२७।३६	१३।४८
९३	५५।४८	४१।५१	२७।५४	१३।५७
९४	५६।२४	४२।१८	२८।१२	१४।६
९५	५७।०	४२।४५	२८।३०	१४।१५
९६	५७।३६	४३।१२	२८।४८	१४।२४
९७	५८।१२	४३।३९	२९।६	१४।३३
९८	५८।४८	४४।६	२९।२४	१४।४२
९९	५९।२४	४४।३३	२९।४२	१४।५१
१००	६०।०	४५।०	३०।०	१५।०

नवांशबलसारिणी

विकालफल

नवांश विकला	स्व पूर्ण ' " "'	मित्र तीनपाद ' " "'	सम दोपाद ' " "'	शत्रु एकपाद ' " "'
१	०।०।३६	०।०।२७	०।०।१८	०।०।९
२	०।१।१२	०।०।५४	०।०।३६	०।०।१८
३	०।१।४८	०।१।२१	०।०।५४	०।०।२७
४	०।२।२४	०।१।४८	०।१।१२	०।०।३६
५	०।३।०	०।२।१५	०।१।३०	०।०।४५
६	०।३।३६	०।२।४२	०।१।४८	०।०।५४
७	०।४।१२	०।३।९	०।२।६	०।१।३
८	०।४।४८	०।३।३६	०।२।२४	०।१।१२
९	०।५।२४	०।४।३	०।२।४२	०।१।२१
१०	०।६।०	०।४।३०	०।३।०	०।१।३०
११	०।६।३६	०।४।५७	०।३।१८	०।१।३९
१२	०।७।१२	०।५।२४	०।३।३६	०।१।४८
१३	०।७।४८	०।५।५१	०।३।५४	०।१।५७
१४	०।८।२४	०।६।१८	०।४।१२	०।२।६
१५	०।९।०	०।६।४५	०।४।३०	०।२।१५
१६	०।९।३६	०।७।१२	०।४।४८	०।२।२४
१७	०।१०।१२	०।७।३९	०।५।६	०।२।३३
१८	०।१०।४८	०।८।६	०।५।२४	०।२।४२
१९	०।११।२४	०।८।३३	०।५।४२	०।२।५१
२०	०।१२।०	०।९।०	०।६।०	०।३।०
२१	०।१२।३६	०।९।२७	०।६।१८	०।३।९
२२	०।१३।१२	०।९।५४	०।६।३६	०।३।१८
२३	०।१३।४८	०।१०।२१	०।६।५४	०।३।२७
२४	०।१४।२४	०।१०।४८	०।७।१२	०।३।३६
२५	०।१५।०	०।११।१५	०।७।३०	०।३।४५
२६	०।१५।३६	०।११।४२	०।७।४८	०।३।५४
२७	०।१६।१२	०।१२।९	०।८।६	०।४।३
२८	०।१६।४८	०।१२।३६	०।८।२४	०।४।१२
२९	०।१७।२४	०।१३।३	०।८।४२	०।४।२१
३०	०।१८।०	०।१३।३०	०।९।०	०।४।३०

नवांश विकला	स्व पूर्ण ' '' '''	मित्र तीनपाद ' '' '''	सम दोपाद ' '' '''	शत्रु एकपाद ' '' '''	नवांश विकला	स्व पूर्ण ' '' '''	मित्र तीनपाद ' '' '''	सम दोपाद ' '' '''	शत्रु एकपाद ' '' '''
३१	०।१८।३६	०।१३।५७	०।९।१८	०।४।३९	४६	०।२७।३६	०।२०।४२	०।१३।४८	०।६।५४
३२	०।१९।१२	०।१४।२४	०।९।३६	०।४।४८	४७	०।२८।१२	०।२१।९	०।१४।६	०।७।३
३३	०।१९।४८	०।१४।५१	०।९।५	०।४।५७	४८	०।२८।४८	०।२१।३६	०।१४।२४	०।७।१२
३४	०।२०।२४	०।१५।१८	०।१०।१२	०।५।६	४९	०।२९।२४	०।२२।३	०।१४।४२	०।७।२१
३५	०।२१।०	०।१५।४५	०।१०।३०	०।५।१५	५०	०।३०।०	०।२२।३०	०।१५।०	०।७।३०
३६	०।२१।३६	०।१६।१२	०।१०।४८	०।५।२४	५१	०।३०।३६	०।२२।५७	०।१५।१८	०।७।३९
३७	०।२२।१२	०।१६।३९	०।११।६	०।५।३३	५२	०।३१।१२	०।२३।२४	०।१५।३६	०।७।४८
३८	०।२२।४८	०।१७।६	०।११।२४	०।५।४२	५३	०।३१।४८	०।२३।५१	०।१५।५४	०।७।५७
३९	०।२३।२४	०।१७।३३	०।११।४२	०।५।५१	५४	०।३२।२४	०।२४।१८	०।१६।१२	०।८।६
४०	०।२४।०	०।१८।०	०।१२।०	०।६।०	५५	०।३३।०	०।२४।४५	०।१६।३०	०।८।१५
४१	०।२४।३६	०।१८।२७	०।१२।१८	०।६।९	५६	०।३३।३६	०।२५।१२	०।१६।४८	०।८।२४
४२	०।२५।१२	०।१८।५४	०।१२।३६	०।६।१८	५७	०।३४।१२	०।२५।३९	०।१७।६	०।८।३३
४३	०।२५।४८	०।१९।२१	०।१२।५४	०।६।२७	५८	०।३४।४८	०।२६।६	०।१७।२४	०।८।४२
४४	०।२६।२४	०।१९।४८	०।१३।१२	०।६।३६	५९	०।३५।२४	०।२६।३३	०।१७।४२	०।८।५१
४५	०।२७।०	०।२०।१५	०।१३।३०	०।६।४५	६०	०।३६।०	०।२७।०	०।१८।०	०।९। *

यह नवांशबलसारिणी कला और विकला की समाप्ति की है। प्रत्येक नवांश २०० कला का होता है। उसका मध्यभाग १०० कलाओं पर हुआ करता है। इसलिये नवांश के आरंभ से १०० कलाओं से न्यून यदि नवांश की कला और विकला शेष रहें तो सारिणी में से उन कला और विकलाओं का जो फल प्राप्त हो, वही उस ग्रह का नवांशबल होगा। यदि सौ १०० कलाओं से अधिक नवांश की कला-विकला हों तो उनको दो सौ कलाओं में से घटा कर जो कला और विकला शेष रहें, उनका बल इस सारिणी के द्वारा निश्चित करना चाहिये।

उदाहरण :—

जैसे इष्टकालिक राश्यादि स्पष्ट सूर्य ४।७।२५।५२ है। इसमें से गत नवांश–४।६।४०।० घटाया तो ०।४५।५२ यह मिथुन नवांश का ४५ कला और ५२ विकला शेष रहा। सूर्य का बुध सम है; इस लिये सम नवांश का बल सूर्य को प्राप्त हुआ। वह बल नवांश-बलसारिणी के द्वारा इस प्रकार है :—

	कला	विकला	प्र० वि०
कला ४५ का फल	१३	३०	
विकला ५२ का फल	०	१५	३६
योग	१३	४५	३६

यह सूर्य का उस समय नवांशबल हुआ, जो कलादि है।

उच्चबल-साधन का प्रकार

इष्टकालिक राश्यादि स्पष्ट ग्रह को उस ग्रह के परम नीच राश्यादि में से अथवा राश्यादि स्पष्ट ग्रह में से उस ग्रह के परम नीच राश्यादि को घटाने पर जो शेष राश्यादि बचे. उसके अंश, कला और विकला बना लें। फिर शेष अंशादि में ६ का भाग देने

से जो कलादि लब्धि आवे, उसे ३० कला में जोड़ देने से उस ग्रह का उच्चबल सिद्ध होता है।

उदाहरण :—

जैसे सूर्य का परमनीचराश्यादि	६ । १० । ० । ० हैं तो
इसमें से इष्टकालिक स्पष्ट सूर्य राश्यादि	४ । ७ । २५ । ५२ को
घटाया तो यह	२ । २ । ३४ । ८

राश्यादि शेष रहा। २ राशि के ६० अंश हुए। इन में २ अंश २४ कला और ८ विकला को जोड़ा तो ६२ अंश ३४ कला और ८ विकला हुआ। इसमें ६ का भाग दिया तो १० कला २५ विकला और ४१।२० प्रतिविकला लब्धि हुई। इसको भी ३० कला में जोड़ दिया तो उस इष्टकालिक सूर्य का ४० कला २८ विकला और ४१।२० प्रतिविकलात्मक उच्चबल हुआ।

वक्र तथा उदयबल का साधन

वक्रबल तथा उदयबल के साधन में दिवसगणना वार अथवा अंग्रेजी तारीख से ही ठीक हुआ करती है। कभी कभी पञ्चाङ्गों में लिखे हुए वक्र-मार्ग और उदयास्तकाल में दो तीन दिन तक का अन्तर भी होता देखा गया है; इसलिये आरंभ-समाप्ति की अवधि को निश्चित करते समय सतर्कता से काम लेना चाहिये। अन्यथा फल कुछ का कुछ हो सकता है!

वक्रबल का उदाहरण

जैसे—ता० १२ मई १९५१ के उदाहरण में शनि वक्री है। यह शनि ता० १२।१।५१ को वक्री हुआ और ता० २९।५।५१ को मार्गी हुआ था, तो इसका वक्रकाल १३८ दिन हुआ। मध्यकाल ६९ दिन हुआ। ता० १२ मई को १२१ दिन वक्रकाल के होते हैं

इनको सम्पूर्णकाल १३८ दिन में से घटाने पर १७ दिन वक्रकाल के शेष रहते हैं। अब यहाँ पर त्रैराशिक से—यदि ६६ दिन में पूर्ण (६०) बक्रबल होता है, तो १७ दिन में क्या होगा ? तो उत्तर मिला कि ०।१४।४७ यह ता० १२ मई को शनिका वक्र-बल हुआ।

उदयबल का उदाहरण

जैसे—चन्द्र का उदयबल लाना है, तो यह चन्द्रमा शुक्लपक्ष की द्वितीया से पूर्णिमा तक १४ दिन में पूर्ण बल पाता है। पूर्णिमा के बाद क्रम से उसका उदयबल घटता हुआ कृष्णपक्ष की १४ को०शून्य हो जाता है। ता०१२ को शुक्लपक्ष की ६ तिथि है, तो शुक्ल द्वितीया से ५ दिन हुए। पूर्णिमा तक चन्द्र के उदयकाल का मध्यकाल होता है। अब यहाँ त्रैराशिक से—यदि १४ दिन में पूर्ण (६०) उदयबल मिलता है, तो ५ दिन में क्या ? उत्तर आया ०।२१।२६ यह ता० १२ मई को चन्द्र का उदयबल हुआ।

वेधसंबंधी विशेष विचार

सभी ग्रह सर्वतोभद्रचक्र में किसी न किसी नक्षत्र पर स्थित हो कर, अपनी अपनी वाम, संमुख तथा दक्षिण दिशा के वर्णादिकों पर वेध किया करते हैं। कौनसा ग्रह कैसी स्थिति में किधर वेध कर सकता है; इसके लिये उस ग्रह की स्वाचारिक गति को आधारभूत माना गया है। यद्यपि गणितशास्त्र के सिद्धान्तानुसार ग्रहों की आठ प्रकार की गति हुआ करती है, तथापि इस चक्र में ग्रहों का स्वाधिष्ठित नक्षत्रस्थान से वाम-संमुख-दक्षिण; तीन ओर वेध होता है; इस कारण ग्रन्थकार ने बक्र शीघ्र तथा मध्य; इन तीन गतियों को ही वेध के उपयुक्त माना है। उनमें से ग्रहों की वक्रगति के तीन भेद हैं—एक वक्र दूसरा अतिवक्र और तीसरा

कुटिल। ग्रन्थकार के "अतिवक्र और कुटिल गतिवाला ग्रह भी वक्री ही होता है।"—इस नियम से राहु-केतु सदावक्री होने से और भौमादिक पाँच ग्रह जब वक्र, अतिवक्र तथा कुटिल गति के होते हैं, तब दक्षिणवेध करते हैं। और सूर्य-चन्द्र कभी वक्रगति के होते ही नहीं; इसलिये इनका दक्षिणवेध भी कभी नहीं होता। ग्रहों की शीघ्रगति के भी दो भेद हैं—एक शीघ्र और दूसरा अतिशीघ्र। सूर्य-चन्द्र सदाशीघ्री होने के कारण मध्यमगति से अधिक गति के होने पर वामवेध करते हैं। किन्तु भौमादि पाँच ग्रह अपनी मध्यम गति से अधिक गति के होने पर भी जब वे अतिशीघ्र गति के होते हैं, तभी वामवेध करते हैं—शीघ्रगति में नहीं। और राहु-केतु कभी मार्गगति के होते ही नहीं; इसलिये इनका वामवेध भी कभी नहीं होता। ग्रहों की मध्यमगति के भी तीन भेद हैं—एक सम दूसरा मन्द और तीसरा अतिमन्द। सूर्य-चन्द्र अपनी मध्यमगति से न्यून होते हुए भी जब उनकी मध्यमगति के तुल्य स्फुटगति भी होती है, तब और जब मन्दगति के होते हैं, तब भी संमुखवेध करते हैं—अतिमन्दगति में नहीं। राहु-केतु सदावक्री और सदैव एकगति होने के कारण कभी भी संमुखवेध नहीं करते। यह नरपति आचार्य का सर्वतोभद्रचक्र से भिन्न स्थल में ग्रहों की वेधदिशा को निश्चित करने का सिद्धान्त है।

ग्रन्थकर्ता ने सर्वतोभद्रचक्र में सूर्य-चन्द्र तथा राहु-केतु का जो सर्वदा त्रिविध (वाम-संमुख-दक्षिण) वेध माना है, वह यदि किसी का शुभाशुभफल सर्वतोभद्रचक्र की रीति से ही कहना हो, तभी चरितार्थ होता है। प्रस्तुत अर्घकाण्ड में सर्वतोभद्रचक्र की रीति से फलनिरूपण नहीं किया जाता; इसलिये ग्रन्थकार के पूर्वोक्त नियमसूत्रों के आधार पर ही वेधविचार फलप्रद होता है।

सर्वतोभद्रचक्र में कोणगत नक्षत्रों के चतुर्थ तथा प्रथम पाद पर स्थित ग्रहों के कोणस्थ स्वर तथा पूर्णातिथि के वेध विषय में विविध मतों का दिग्दर्शन तो किया जा चुका है। वहाँ भी ग्रन्थकार के कथनानुसार कोणगतनक्षत्र के चतुर्थ तथा प्रथम पादस्थ ग्रह की स्वाभाविक वक्रादि गति का उपयोग नहीं होता। कारण कि, ग्रन्थकर्ता नरपति आचार्य के मत में कोणवेध गति-निरपेक्ष है और अन्यवेध गतिसापेक्ष हैं। किन्तु यह भी जब सर्वतोभद्रचक्र की रीति से यदि शुभाशुभ फल निरूपण करना हो, तभी चरितार्थ होता है। अतिरिक्त स्थल में तो ग्रहों की वक्रादि गति के आधार पर ही कोणगत वेध फलप्रद होता है। हां, प्रस्तुत अर्घकाण्ड में यह विशेषता पाई जाती है कि, देशादि का स्वामी ग्रह चाहे जिस गति का क्यों न हो, वह कोणस्थ नक्षत्र के चतुर्थ एवं प्रथम पाद पर स्थित होते हुए भी अपनी स्वाभाविक गति से जिधर वेध कर सकता है, उधर तो वेध करता ही है; किन्तु अपने स्वामित्वरूप विशेषाधिकार से कोणवेध भी करता है। साथ ही जब स्वामी के अतिरिक्त दूसरा कोई ग्रह कोणवेध करता है, तब उसके अन्य वेध नहीं होते। क्योंकि, उसे उसी नक्षत्र के अन्य चरणों में स्थित हो कर अन्य वेधों के लिये अवसर मिल जाता है।

राहु-केतु को छोड़ कर अन्य सभी (सूर्यादि) ग्रहों की गति घटती बढ़ती रहती है। उनकी गति में जो ह्रास-वृद्धि हुआ करती है, वह भी स्थिर नहीं होती। अतएव फलनिर्देश के लिये हमारे पूर्वाचार्यों ने सूर्यादि ग्रहों की मध्यमगति को स्थिर मान कर, उससे अधिक गति वाले ग्रह को शीघ्रगति तथा अतिशीघ्रगति माना है। मध्यमगति के तुल्य उस ग्रह की जब स्फुट गति भी हो, तब उसे समगति कहा है। और मध्यमगति से न्यूनगतिवाले ग्रह

को मन्दगति तथा अतिमन्दगति बतलाया है। परन्तु यह कहीं भी स्पष्टरूप से नहीं बतलाया कि, मध्यमगति से वह ग्रह कितनी अधिक वा न्यून गति का होगा, तब वह शीघ्रगति तथा अतिशीघ्रगति एवं मन्दगति तथा अतिमन्दगति माना जायगा। ऐसी स्थिति में यह उचित जान पड़ता है कि, प्रस्तुत प्रकरण में त्रिविध वेध, त्रिविध गति, त्रिविध देशादि वेध्य, त्रिविध (समर्घ-महार्घ-साम्य) मूल्य आदि सभी त्रिविध हैं, तब ऐसा क्यों न मान लिया जाय कि, ग्रहों की मध्यमगति से उनकी परमशीघ्र गति का जितना अन्तर हो, उसे तीन भागों में विभक्त करके, परमशीघ्रगति के समीपवाला तृतीय भाग ही अतिशीघ्रगति का होता है—उस भाग की गति से भ्रमण करनेवाला ग्रह अतिशीघ्री होने से वामवेध करता है। मध्यमगति से आगे के प्रथम भाग में वह ग्रह समगति हो कर संमुखवेध तो कर सकता है, परन्तु वामवेध नहीं। और द्वितीयभाग में वह ग्रह शीघ्रगति होते हुए भी वामवेध करने का अधिकारी नहीं होता। इसी तरह ग्रहों की मध्यमगति से परममन्दगति का जितना अन्तर हो, उसके भी तीन भाग करके परममन्दगति के निकट का प्रथम भाग अतिमन्दगति का होता है। उस गति से भ्रमण करनेवाला ग्रह संमुखवेध नहीं कर सकता। शेष दोनों भागों में द्वितीय भाग मन्दगति का और तीसरा भाग समगति का होता है। इन दोनों भागों की गति से भ्रमण करनेवाला ग्रह संमुखवेध करता है।

यहाँ पर यह भी स्मरण रखने के योग्य है कि, सूर्य-चन्द्र सदाशीघ्री होने के कारण, अपनी मध्यमगति से अधिकगति के होते ही सर्वदा वामवेध किया करते हैं; यह उनका स्वभाव है। क्योंकि, नरपति आचार्य ने इन दोनों को स्पष्ट शब्दों में सदाशीघ्री कहा है।

बलसंबंधी विशेष विचार

सूर्य का उदयबल सर्वदा पूर्ण ही रहता है—न्यूनाधिक नहीं। क्योंकि, वह सदोदित ग्रह है।

चन्द्रमा केवल अमावास्या तथा प्रतिपदा को अस्त रहता है। शेष २८ दिन उदित रहता है। चन्द्रमा का उदयबल अनुपातसिद्ध हुआ करता है।

राहु-केतु का उदयबल सर्वदा शून्य ही रहता है। क्योंकि, ये दोनों कभी उदित नहीं होते।

सूर्य-चन्द्र का वक्रबल सर्वदा शून्य ही रहता है। क्योंकि, ये दोनों कभी वक्री नहीं होते।

राहु-केतु का वक्रबल सर्वदा पूर्ण ही रहता है। कारण कि, ये दोनों सदावक्री हैं।

वेधविषयक आवश्यक संकेत

सर्वतोभद्रचक्र में वर्णादिकों पर वेध—दिशा की पहिचान के लिये निम्नलिखित संकेतों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

वामवेध का	संकेत	L
दक्षिणवेध का	"	R
संमुखवेध का	"	8
कोणवेध का	"	(१) (४)
स्थितिजवेधका	"	ठ
दृष्टिहीनवेधका	"	०
वेधहीनग्रह का	"	×
अंश का	"	.
कला का	"	,
विकला का	"	"
प्रतिविकला का	"	'''

शुभ ग्रह की विंशोपक-सारिणी

	१ वेध्य	२ वेध्य	३ वेध्य	४ वेध्य	५ वेध्य
पूर्ण वेध पूर्ण दृष्टि	१।०।०	२।०।०	३।०।०	४।०।०	५।०।०
पूर्ण वेध त्रिपाददृष्टि	०।४५।०	१।३०।०	२।१५।०	३।०।०	३।४५।०
पूर्ण वेध द्विपाददृष्टि	०।३०।०	१। ०।०	१।३०।०	२।०।०	२।३०।०
पूर्ण वेध एकपाददृष्टि	०।१५।०	०।३०।०	०।४५।०	१।०।०	१।१५।०
त्रिपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।४५।०	१।३०।०	२।१५।०	३।०।०	३।४५।०
त्रिपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०।२३।४५	१।७।३०	१।४०।१५	२।१५।०	२।४८।४५
त्रिपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०।२२।३०	०।४५।०	१।७।३०	१।३०	१।५२।३०
त्रिपाद वेध एकपाददृष्टि	०।११।१५	०।२२।३०	०।३३।४५	०।४५।०	०।५६।१५
द्विपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।३०।०	१।०।०	१।३०।०	२।०।०	२।३०।०
द्विपाद वेध त्रिपाददृष्टि	०।२२।३०	०।४५।०	१।७।३०	१।३०।०	१।५२।३०
द्विपाद वेध द्विपाद गृष्टि	०।१५।०	०।३०।०	०।४५।०	१।०।०	१।१५।०

	१ वेध्य	२ वेध्य	३ वेध्य	४ वेध्य	५ वेध्य
द्विपाद वेध एकपाद दृष्टि	०।७।३०	०।१५।०	०।२२।३०	०।३०।०	०।३७।३०
एकपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।१५।०	०।३०।०	०।४५।०	१।०।०	१।१५।०
एकपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०।११।१५	०।२२।३०	०।३३।४५	०।४५।०	०।५६।१५
एकपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०।७।३०	०।१५।०	०।२२।३०	०।३०।०	०।३७।३०
एकपाद वेध एकपाददृष्टि	०।३।४५	०।७।३०	०।११।१५	०।१५।०	०।१८।४५

क्रूरग्रह की विंशोपक-सारिणी

पूर्णवेध पूर्ण दृष्टि	०।४८।०	१।३६।०	२।२४।०	३।१२।०	४।०।०
पूर्णवेध त्रिपाददृष्टि	०।३६।०	१।१२।०	१।४८।०	२।२४।०	३।०।०
पूर्णवेध द्विपाददृष्टि	०।२४।०	०।४८।०	१।१२।०	१।३६।०	२।०।०
पूर्णवेध एकपाद दृष्टि	०।१२।०	०।२४।	०।३६।०	०।४८।०	१।०।०
त्रिपाद वेध पूर्णदृष्टि	०।३६।०	१।१२।०	१।४८।०	२।२४।०	३।०।०
त्रिपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०।२७।०	०।५४।०	१।२१।०	१।४८।०	२।१५।०

	१ वेध्य	२ वेध्य	३ वेध्य	४ वेध्य	५ वेध्य
त्रिपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०।१८।०	०।३६।०	०।५४।०	१।१२।०	१।३०।०
त्रिपाद वेध एकपाद दृष्टि	०। ९।०	०।१८।०	०।२७।०	०।३६।०	०।४५।०
द्विपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।२४।०	०।४८।०	१।१२।०	१।३६।०	२। ०।०
द्विपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०।१८।०	०।३६।०	०।५४।०	१।१२।०	१।३०।०
द्विपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०।१२।०	०।२४।०	०।३६।०	०।४८।०	१। ०।०
द्विपाद वेध एकपाद दृष्टि	०। ६।०	०।१२।०	०।१८।०	०।२४।०	०।३[illegible]
एकपाद वेध पूर्ण दृष्टि	०।१२।०	०।२४।०	०।३६।०	०।४८।०	१। ०।०
एकपाद वेध त्रिपाद दृष्टि	०। ९।०	०।१८।०	०।२७।०	०।३६।०	०।४५।०
एकपाद वेध द्विपाद दृष्टि	०। ६।०	०।१२।०	०।१८।०	०।२४।०	०।३०।०
एकपाद वेध एकपाद दृष्टि	०। ३।०	०। ६।०	०। ९।०	०।१२।०	०।१५।०

तेजी-मंदी जानने की पद्धति का स्वरुप

आधुनिक व्यापारक्रम को देखते हुए निर्णयकर्ता को चाहिये कि, वह सबसे पहिले वर्ष, मास अथवा दिन के फलविचार में एक तो आरम्भकाल की अवधि और दूसरी समाप्तिकाल की अवधि; इस प्रकार दो अवधियों को निश्चित करे। प्रथम वर्ष, मास अथवा दिन के बन्द बाजार का जो समय हो, वह आरम्भ की और द्वितीय वर्ष, मास अथवा दिन के बन्द बाजार का जो समय हो, वह समाप्ति अथवा भावी शुभाशुभ फल की अवधि होती है। क्योंकि, प्रायः सभी बाजारों के बन्द होने का कोई निश्चित समय नहीं होता। फिर उन दोनों अवधियों के इष्टकालों पर सूर्यादि ग्रहों का स्पष्ट करके, उनके नीचे प्रत्येक ग्रह की कला—विकला सहित गति को लिखे। बाद में 'वेधविषयक विशेष विचार' के अनुसार ग्रहों का वेधोपयुक्त वक्र-शीघ्र-समत्व निश्चित करके, प्रत्येक ग्रह के नीचे जो ग्रह जैसा हो, वैसा (वक्री, शीघ्री तथा समचारी) लिखे, जिससे यह जाना जा सके कि, कौनसा ग्रह सर्वतोभद्रचक्र में किधर (दाहिने, बाँयें या सामने की तरफ) वेध कर सकेगा। इसके बाद प्रत्येक ग्रह के नीचे, वह ग्रह जिस नक्षत्र के जिस चरण में हो, वह नक्षत्र और उसकी चरणसंख्या भी लिखे। जिससे कौनसा ग्रह कोणवेध अथवा नवांशवेध या स्थितिजवेध कर रहा है; यह जाना जा सके। फिर स्वामिनिर्णयार्थ

यह भी निश्चित करके लिखे कि, कौनसा ग्रह स्वमित्रादि किस क्षेत्र में है, और किस नवांश में विद्यमान है, उदित है या अस्त, वक्री है या मार्गी, उच्चस्थ है या नीचस्थ। बाद में प्रत्येक ग्रह का १ क्षेत्रबल २ नवांशबल ३ उदयबल ४ वक्रबल और ५ उच्चबल पूर्वोक्त रीति से निश्चित करके, पांचों बलों का योग प्रत्येक ग्रह के नीचे लिखे। फिर देश, काल तथा पण्य के स्वामियों में से जो उस समय अधिक बली हो, उसे देशादि का स्वामी माने। बाद में देश, काल तथा पण्य; इन तीनों के पृथक् पृथक् वर्णादि-पञ्चक निर्माण करे। पुनः यह देखे कि, सर्वतोभद्र चक्र में उन देश-काल-पण्य के वर्णादिपञ्चकों पर किन किन ग्रहों का कितने पाद वेध होता है और उन वेधक ग्रहों की देशादि के वर्णादिपञ्चकों की राशिपर मेषादि राशिमण्डल में कितने पाद दृष्टि है। उन वेध और दृष्टि के पादों के अनुमान से सौम्य तथा क्रूर ग्रहों के विंशोपक सारिणी के द्वारा निर्माण करके जुदा जुदा उनका योग करे। उनमें से जिधर के विंशोपक अधिक हों, उनमें से जिधर के न्यून हों, उनको घटा कर शेष विंशोपक दोनों अवधि-कालों पर पृथक् पृथक् लिखे। फिर इन दोनों अवधियों के शेष विंशोपकों में से भी जिधर के अधिक हों, उनमें से जिधर के न्यून हों, उनको घटा देने पर जो शेष बचेगा, वह भावी फल का उत्पादक होने से 'फल-विंशोपक' होगा। जहां पर जिस वस्तु की खरीद-बिक्री का जैसा व्यवहार चलता हो, जो कि तोल के स्वरूप में या मूल्य के स्वरूप में घटता बढ़ता रहता हो, वह उस दिन के उस समय का पूर्ण विंशोपक—बीस के बराबर होता है। फिर त्रैराशिक की रीति से यह उत्तर लावे कि, यदि बीस में यह पूर्ण भाव या मूल्य है (जो आपको मालूम है) तो पूर्वोक्त पद्धति के द्वारा निश्चित किये हुए प्रथम अवधि के फलविंशोपक में क्या ? जो उत्तर आवे, उसे

'अ' संज्ञक समझें। यह सर्वदा एक के बराबर रहता है। पुनः त्रैराशिक से उत्तर लावे कि, यदि एक में यह उपर्युक्त 'अ' है, तो दोनों अवधियों के फलविंशोपकों के अन्तर में क्या? जो उत्तर आवेगा, वह आप के इष्ट दिन की इष्ट अवधि के भाव या मूल्य का अन्तर होगा। वह अन्तर यदि सौम्य—शेष के आधार पर ऋण हो, तो वर्तमान भाव या मूल्य में घटा दे और क्रूर—शेष के आधार पर यदि वह अन्तर धन हो, तो वर्तमान भाव या मूल्य में जोड़ दे। ऐसा करने से जो भाव या मूल्य बनेगा, वही इष्ट दिन की इष्ट अवधि का भाव या मूल्य होगा।

अथवा प्रथम तथा द्वितीय अवधि के फलविंशोपक तैयार करलें। फिर वर्तमान मूल्य का (जो प्रत्येक समय में भिन्न भिन्न हुआ करता है) विंशांश निर्माण कर लें। बाद में त्रैराशिक से फल लावें कि, यदि प्रथम अवधि के फलविंशोपकों में यह मूल्य का विंशोपक (विंशांश) था तो द्वितीय अवधि के न्यून वा अधिक फलविंशोपकों में क्या? जो उत्तर आवे, उतनी ही घटाबढ़ी होकर इष्ट दिन (द्वितीय अवधि) का वर्तमान मूल्य होगा।

उदाहरण

जैसे :—किसी ने पूछा कि, बंबई में ता० १२।५।५१ शनिवार को मध्याह्नोत्तर ३ बजे (स्टैंडर्ड टाइम) चांदी के वैशाख वायदा का २०४।) यह वर्तमान मूल्य (बंद बाजार का भाव) है, तो तारीख १४।५।५१ सोमवार को मध्याह्नोत्तर ३ बजे (स्टैंडर्ड टाइम) चांदी के वैशाख वायदा का क्या मूल्य होगा? तो उत्तर इस प्रकार होगा कि:—

स्थान बंबई । ता० १२ । ५ । ५१ शनिवार । मध्याह्नोत्तर ३ बजे (स्टैंडर्ड टाइम) चांदी का वर्तमान मूल्य २०४।) वैशाख वायदा—

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	०	३	१	०	११	२	५	१०	४
	२७	७	०	५	११	८	२	२२	२२
	४१	११	१४	४६	१६	२१	३६	३६	३६
	४८	६	४५	३४	५६	६	२६	३४	३४
गति कला	५७	७१७	४२	२०	१२	६८	२	३	३
गति विकला	५८	३८	४५	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	सम	×	शीघ्र	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वामित्रादि क्षेत्र	मित्र	स्व	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादिनवांश	मित्र	मित्र	सम	मित्र	शत्रु	सम	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
उच्च-नीच	उच्च	×	×	×	×	×	×	×	×
नक्षत्रपाद	कृ १	पुष्य २	कृ २	अश्विनी२	उ.भा.३	आर्द्रा १	उ.फा.२	पू.भा. १	पू.फा.२

ग्रह	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	उच्चबल	योग
सूर्य	०।६।५५	०।२७।४५	१।०।०	०।०।०	०।५७।३	२।३१।४३
चन्द्र	०।२८।४५	०।१४।१	०।२१।२६	०।०।०	०।४६।१८	१।५३।३०
मङ्गल	०।०।२६	०।४।२५	०।०।०	०।०।०	०।४४।३७	०।४६।३१
बुध	०।११।३३	०।२४।३	०।१०।३०	०।०।०	०।३३।२८	१।१६।३४
गुरु	०।४५।८	०।११।३३	०।१२।५४	०।०।०	०।४१।३	१।५०।३८
शुक्र	०।२५।३	०।२६।३६	०।४८।५८	०।०।०	०।४८।६	२।३१।४६
शनि	०।७।४६	०।२६।८	०।४१।४५	०।१४।४७	०।५२।६	२।२२।३५
राहु	०।७।२०	०।६।४	०।०।०	१।०।०	०।४०।२७	१।५३।५१
केतु	०।७।२०	०।६।४	०।०।०	१।०।०	०।४०।२७	१।५३।५१

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
वंबई स्थान का वर्णादिपञ्चक	ब	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
स्वामी चन्द्र	गु L		०मं L ०बु8		
कालका ”	ड	पुष्य	कर्क	अ	नंदा६शु.प.
स्वामी चन्द्र	०शR		बु8		मं L
पण्य चांदी का ”	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	०गु L				

विवेचन :—

ऊपर लिखे हुए देश-काल–पण्य के वर्णादिकों पर वही वेध लिया गया है, जो पूर्वोक्त 'वेध-संबंधी विशेष विचार' में बतलाए हुए प्रकार से जो ग्रह अपनी गति के अनुसार सर्वतोभद्रचक्र में जिधर वेध कर सकता है। जिन ग्रहों का वेध तो हो रहा है, परन्तु उनकी वेध्य राशि पर दृष्टि नहीं है; उसके लिये उन ग्रहों के पहिले ० ऐसा संकेत चिह्न दे दिया है, जिससे यह विदित हो जाय कि, यह वेध दृष्टिहीन है—इस वेध का फल कुछ भी न होगा। आगे के उदाहरणों में भी इसी तरह वेध लिया गया है।

आज के इस उदाहरण में देश, काल तथा पण्य के वर्णादिपञ्चकों पर वेध करने वाले ग्रहों में दो सौम्य ग्रह हैं, और एक क्रूर ग्रह। पूर्वोक्त विंशोपक-सारिणी के द्वारा इन ग्रहों के विंशोपक इस प्रकार होते हैं:—

सौम्य ग्रह		क्रूर ग्रह	
ब+गु L	०। ७।३०	नन्दा+मं L	०।६।०
कर्क+बु 8	०।३३।४५	क्रूर योगः	०।६।०
शुभ योगः	०।४१।१५		
—क्रूर योगः	०। ६। ०		
शेष	०।३२।१५	शुभ विंशोपक	

यह ता० १२।५।५१ शनिवार के शेष फलविंशोपक निश्चित हुए। उस समय बंबई के चांदी बाजार का वैशाखवायदा का भाव २०४।) सायंकाल के ३ बजे स्टैंडर्ड टाइम पर था।

स्थान बंबई । ता० १४।५।५१ सोमवार । स्टैंडर्ड टाइम मध्याह्नोत्तर ३ बजे । चांदी का वर्तमान मूल्य २०१।~) वैशाख वायदा ।

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	०	४	१	०	११	२	५	१०	४
	२६	१	१	६	११	१०	२	२२	२२
	३७	३१	४०	३१	४१	३८	३३	३३	३३
	२६	१६	४५	३८	५६	३	२६	३४	३४
गतिकला	५७	७४२	४२	२५	१२	६६	२	३	३
गति विकला	५४	२६	४०	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	सम	सम	शीघ्र	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
नक्षत्र पाद	कृ १	मघा १	कृ २	अश्विनी २	उ. भा. ३	आर्द्रा २	उ. फा २	पू. भा. १	पू. फा. ३
स्वमित्रादि क्षेत्र	मित्र	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादि नवांश	मित्र	सम	सम	मित्र	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
वक्री, मार्गी	मा.	मा.	मा.	मा.	मा.	मा.	वक्री	वक्री	वक्री

	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०। १। ६	०।१०। ८	१। ०। ०	०। ०। ०	०।५६।४४	२। ८।१
चन्द्र	०। ४।३४	०।२७।२४	०।३०। ०	०। ०। ०	०।४५।१५	१।४७।१३
मङ्गल	०। ३।२१	०।२६।४६	०। ०। ०	०। ०। ०	०।४४।२३	१।१७ ३०
बुध	०।१३। ३	०। ३।४६	०।१३।३०	०। ०। ०	०।३३।३५	१। ३।५४
गुरु	०।४६।४८	०।१४।४२	०।१३।३३	०। ०। ०	०।४१। ७	१।५६।१०
शुक्र	०।२१।५४	०।१७। ७	०।४८। ०	०। ०। ०	०।४७।४४	२।१४।४५
शनि	०। ७।४१	०,२७।५६	०।४१। ३	०।१३। ३	०।५२। ६	२।२१।४६
राहु	०। ७।२६	०। ६।५८	०। ०। ०	१। ०। ०	०।४०।२६	१।५४।५०
केतु	०। ७।२६	०। ६।५८	०। ०। ०	१। ०। ०	०।४०।२६	१।५४।५०

बंबई स्थान का	वर्णादि पञ्चक	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
स्वामी चन्द्र		व	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
		गु L		०बु8		चं (१)
		चं 8				
काल का	”	त	विशाखा	तुला	उ	जया ८ शुक्ल पक्ष
स्वामीचन्द्र					चं 8	
पण्य का	”	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	”	०गुL				चं (१)

विवेचनः—

वेधकर्ता दोनों ग्रह सौम्य हैं। पूर्वोक्त विंशोपकसारिणी के द्वारा दोनों ग्रहों के विंशोपक इस प्रकार होते हैं:—

सौम्यग्रह	
ब+गुL	०। ७।३०
ब+चं 8	०।१५। ०
स्थानीय पूर्णा+चं (१)	०।१५। ०
उ +चं 8	०।१५। ०
पण्य-पूर्णा+चं (१)	०।११।१५
शुभ योग	१। ३।४५ शेष शुभविंशोपक

अथ यहां पर पूर्वोक्त पद्धति क्रम से इस प्रकार फल निकाला जायगा कि:—

द्वितीय अवधि ता० १४। ५। ५१ सोमवार के शेष शुभ विंशोपक	१। ३। ४५
प्रथम अवधि ता० १२। ५। ५१ शनिवार के शेष शुभ विंशोपक	०।३२। १५
दोनों का अन्तर	०।३१। ३०

यह अन्तर ही भावी फल का उत्पादक होने से 'फल-विंशोपक' हुआ।

प्रथम दिन के फलविंशोपक ०। ३२। १५ $= \frac{४३}{८०}$
द्वितीय दिन के फलविंशोपक ०। ३१। ३० $= \frac{२१}{४०}$ } इस प्रकार इन तीनों का लघु स्वरूप हुआ।
मूल्य २०४।) $= \frac{८१७}{४}$

अब यहां त्रैराशिक की रीति से उत्तर लाया गया कि, यदि २० के बराबर $\frac{८१७}{४}$ रुपया मूल्य है, तो प्रथम दिन के $\frac{४३}{८०}$ फलविंशोपकों के बराबर क्या मूल्य रहेगा, तो $\frac{८१७}{४} \times \frac{४३}{८०} \times \frac{१}{२०}$ = यह आया हुआ उत्तर 'अ' संज्ञक हुआ। यह एक के बराबर है। पुनः त्रैराशिक की रीति से उत्तर लाया गया कि, इस एक अन्तर में यदि $\frac{२१}{४०}$ है, तो 'अ' संज्ञक में क्या ? तो

रु० आना

$$अ = \left(\frac{८१७}{४} \times \frac{४३}{८०} \times \frac{१}{२०} \right) \times \frac{२१}{४०} = \frac{७३७७५१}{२५६०००} = २\frac{२२५७५१ \times १६}{२५६०००} = \frac{३६१२०१६}{२५६०००} = १४$$

$$\therefore \frac{२८०१६ \times १२}{२५६०००} = \frac{३३६१९२}{२५६०००} = १ \text{ पाई।}$$

यह उत्तर आया। शुभाधिक शेष होने से प्रथम इष्ट काल के मूल्य २०४।) में २॥≈) घटा देने से २०१।≈) हुआ। यह ता० १४।५।५१ सोमवार का वर्तमान मूल्य हुआ।

परन्तु बोर्ड की तरफ से प्रकाशित दैनिक रिपोर्ट में चांदी के वैशाख वायदा का बन्द बाजार का भाव २०१।−) छपा है—वह स्वल्पान्तर होने से दोषरहित है। प्रायः बाजार के भावों में आना आध आना का अन्तर बहुधा हुआ करता है। इसी क्रम से आगे भी सर्वत्र भाव या मूल्य की घटाबढ़ी समझना चाहिये।

स्थान बंबई। ता० १५।५।५१ मंगलवार। स्टैंडर्ड टाइम सायंकाल ५ बजे। चांदी का वर्तमान मूल्य २०३।=) वैशाख वायदा

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	४	१	०	११	२	५	१०	४
	०	१५	२	७	११	११	२	२२	२२
	४०	६	२७	२	५४	५१	३२	३०	३०
	११	४६	२०	३८	०	४६	१५	१८	१८
गति कला	५७	७६२	४२	२६	११	६८	१	३	३
गति विकला	५२	२०	३७	०	०	०	०	११	११
वक्र;शीघ्र,सम	सम	सम	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वमित्रादिक्षेत्र	शत्रु	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादिनवांश	शत्रु	मित्र	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
नक्षत्र पाद	कृ २	पू.फा.१	कृ.२	अश्विनी३	उ.भा.३	आर्द्रा२	उ.फा.२	पू.भा.१	प.फा.३

स्वामिनिर्णयार्थ ग्रहों का क्षेत्रादिबल

ग्रह	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०।४०।०	०।६।२	१।०।०	०।०।०	०।५६।३३	२।४२।३५
चन्द्र	०।४४।३१	० ४०।३५	०।३४।१७	०।०।०	०।४२।५८	२।४२।२१
मङ्गल	०।४।५५	०।१५।४८	०।०।०	०।०।०	०।४४।१५	१।४।५८
बुध	०।१४।५	०।१३।३५	०।१५।०	०।०।०	०।३३।४०	१।१६।२०
गुरु	०।४७।३६	०।१२।५४	०।१३।५२	०।०।०	०।४१।९	१।५५।३१
शुक्र	०।३५।३६	०।३९।४१	०।४७।३२	०।०।०	०।४७।३१	२।५०।२०
शनि	०।७।३७	०।२८।३९	०।४०।४२	०।१२।०	०।५२।५	२।२१।३
राहु	०।७।३०	०।७।२७	०।०।०	१।०।०	०।४०।२५	१।५५।२२
केतु	०।७।३०	७।७।२७	०।०।०	१।०।०	०।४०।२५	१।५५।२२

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का वर्णादिपञ्चक	ब	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
स्वामी चन्द्र	गुL		चं8 ०बु8		
काल का ”	थ	उ.भाद्र.	मीन	ए	रिक्ता ९शु.प.
स्वामी चन्द्र	०सू8 द वैध से				
पण्य का ”	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	०सू8 ०गुL				

Indian Institute … Acc. No. … Date 20-3-68

आज का फल इस प्रकार होगा कि :—

ब + गुL ०।७।३०
वृष + चं ०।१५।०

शुभ योग ०।२२।३० शुभ शेष = यह प्रथम दिन के ०।३१।३० शुभ फलविंशोपकों से न्यून हैं, इसलिये अशुभ-संज्ञक हैं। अत एव यहां पर दोनों का अन्तर न होगा। दोनों ही यथास्थित रहेंगे।

यहां त्रैराशिक की पद्धति से प्रथम फलविंशोपक में यदि यह वर्तमान मूल्यविंशांश है, तो द्वितीय फलविंशोपक में क्या ?

$\frac{२१}{४०} \times \frac{३२२१}{३२०} \times \frac{३}{८} = \frac{२०२१२३}{१०२४००}$ = २ रुपया। यह उत्तर आया।

यह फल क्रूरसंज्ञक शेष का होने के कारण वर्तमान मूल्य में जोड़ देने से [२०१।–) + २) = २०३।–)] यह वर्तमान मूल्य हुआ।

आज भी स्वल्पान्तर होने से दोषरहित है। क्योंकि, रिपोर्ट में आज का भाव २०३।=) छपा है।

स्थान बंबई । ता० १६ । ५ । ५१ बुधवार । स्टैंडर्ड टाइम सायंकाल ५ बजे । चांदी वैशाख वायदा वर्तमान मूल्य २०३॥।~) ।

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चंद्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	४	१	०	११	२	५	१०	४
	१	२८	३	७	१२	१२	२	२२	२२
	३८	६	१०	३५	५	५६	३०	२६	२६
	१	४२	२०	३३	५६	४६	१६	४८	४८
गति कला	५७	७६१	४२	३३	१२	६८	२	३	३
गति विकला	५०	०	३२	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	×	शीघ्र	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वामित्रादिक्षेत्र	शत्रु	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादिनवांश	शत्रु	सम	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
उच्च-नीच	उच्च	×	×	×	×	×	×	×	×
नक्षत्रपाद	कृ२	उ.फा.१	कृ२	अश्विनी२	उ.भा.३	आर्द्रा२	उ.फा.२	पू.भा.१	पू.फा.३

ग्रह	१ क्षेत्रबल	२ नवांशवल	३ उदयवल	४ वक्रवल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०।१।३८	०।१४।४२	१।०।०	०।०।०	०।५६।२४	२।१२।४४
चन्द्र	०।५।३१	०।२६।५५	०।३८।३४	०।०।०	०।४०।४८	१।५१।४८
मङ्गल	०।६।२१	०।२।५४	०।०।०	०।०।०	०।४४।८	०।५३।२३
वुध	०।१५।११	०।३३।२०	०।१६।३०	०।०।०	०।३३।४६	१।३८।४७
गुरु	०।४८।२४	०।११।६	०।१४।१२	०।०।०	०।४१।११	१।५४।५३
शुक्र	०।३८।५८	०।६।५	०।४७।२	०।०।०	०।४७।२०	२।२२।२५
शनि	०।७।३०	०।२६।३४	०।४०।२१	०।११।१८	०।५२।५	२।२०।४८
राहु	०।७।३३	०।७।५६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२४	१।५५।५६
केतु	०।७।३३	०।७।५६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२४	१।५५।५६

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का वर्णादिपञ्चक	ब	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
स्वामी चन्द्र	गुL		०बु8		
कालका "	द	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा१० शु.प.
स्वामी चन्द्र					
पण्यका "	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	०गुL				

ब + गुL ०।७।२० शुभ शेष विंशोपक।

आज के शेष विंशोपक भी प्रथम दिन के शेष विंशोपकों से न्यून होने के कारण अशुभ-संज्ञक हुए। त्रैराशिक-पद्धति से :-

$\frac{३}{८} \times \frac{३२५३}{३२०} \times \frac{१}{८} \times \frac{१६}{१} = \frac{१५६१४४}{२०४८०}$ = ८ आना। यह उत्तर आया।

इसे वर्तमान मूल्य में जोड़ा २०३।-)+।।) तो २०३।।।-) यह आज का वर्तमान मूल्य हुआ।

स्थान बंबई। ता० १७। ५। ५१ गुरुवार। स्टैंडर्ड टाइम सायंकाल ४ बजे। चांदी वैशाख वायदा का वर्तमान मूल्य २०३।)

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	५	१	०	११	२	५	१०	४
	२	११	३	८	१२	१४	२	२२	२२
	३३	२	५१	११	१७	४	२६	२३	२३
	२४	३६	३३	५२	२६	३	१८	२६	२६
गति कला	५७	८१४	४२	३८	१२	६७	१	३	३
गति विकला	४८	३६	३०	०	०	०	०	११	११

वक्र;शीघ्र,सम	×	शीघ्र	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
स्वमित्रादिक्षेत्र	शत्रु	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादिनवांश	शत्रु	सम	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
नक्षत्र पाद	कृ २	हस्त. १	कृ.३	अश्विनी३	उ.भा.३	आर्द्रा३	उ.फा.२	पू.भा.१	पू.फा.३

ग्रह	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग
सूर्य	०।२।३३	०।६।५९	१।०।०	०।०।०	०।५६।१४	२।५।४६
चन्द्र	०।३३।८	०।१८।४८	०।४२।५१	०।०।०	०।४३।३९	२।१८।२६
मङ्गल	०।७।४१	०।९।२८	०।०।०	०।०।०	०।४४।१	१।१।१०
बुध	०।१६।२४	०।५५।७	०।१८।०	०।०।०	०।३३।५२	२।३।२३
गुरु	०।४९।८	०।९।२३	०।१४।३१	०।०।०	०।४१।१३	१।५४।१५
शुक्र	०।४२।१२	०।१९।४९	०।४६।३४	०।०।०	०।४७।९	२।३५।४४
शनि	०।७।४८	०।३०।२५	०।४०।०	०।१०।२६	०।५२।५	२।२०।२४
राहु	०।७।३७	०।८।२९	०;०।०	१।०।०	०।४०।२४	१।५६।३०
केतु	०।७।३७	०।८।२९	०।०।०	१।०।०	०।४०।२४	१।५६।३०

	वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का वर्णादिपञ्चक	ब	रोहिणी	वृष	ओ	पूर्णा
स्वामी चन्द्र	गुL		०बु8		
काल का ”	भ	मूल	धन	अ	नंदा११शु. पक्ष
स्वामी चन्द्र					
पण्य का ”	च	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा
स्वामी शनि	०गुL				

ब + गुL ०।७।३० शुभ शेष विंशोपक

प्रथम दिन के शेष विंशोपक भी ०।७।३० ही थे और आज के शेष विंशोपक भी ०।७।३० ही हैं। दोनों में अन्तर यह है कि, प्रथम दिन के अशुभसंज्ञक थे और आज के शुभसंज्ञक। इसलिये जितना फल पहिले दिन मूल्य में बढ़ा था, उतना ही फल आज के मूल्य में घटेगा। वह इस प्रकार होगा कि— २०३॥।–) – ॥)=२०३।–) हुआ। रिपोर्ट में २०३।) छपा है। यहाँ भी स्वल्पान्तर होने से दोषरहित है।

स्थान बंबई। ता० १८।५।५१ शुक्रवार। स्टैंडर्ड टाइम मध्याह्नोत्तर ४ बजे। चांदी वैशाख वायदा का वर्तमान मूल्य २०२|||)।

स्पष्ट ग्रह	सूर्य	चन्द्र	मङ्गल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि	राहु	केतु
	१	५	१	०	११	२	५	१०	४
	३	२४	४	८	१२	१५	२	२२	२२
	३१	५७	३३	५२	२६	११	२८	२०	२०
	११	२२	३७	४०	२६	५६	१८	२६	२६
गतिकला	५७	८४३	४२	४१	१२	६८	१	३	३
गति विकला	४७	५२	०	०	०	०	०	११	११
वक्र, शीघ्र, सम	×	शीघ्र	×	सम	शीघ्र	×	वक्री	वक्री	वक्री
नक्षत्र पाद	कृ ३	चित्रा १	कृ ३	अश्विनी ३	उ. भा. ३	आर्द्रा ३	उ. फा. २	पू. भा. १	पू. फा. ३
स्वमित्रादि क्षेत्र	शत्रु	मित्र	सम	सम	स्व	मित्र	मित्र	शत्रु	शत्रु
स्वमित्रादि नवांश	शत्रु	मित्र	सम	स्व	शत्रु	मित्र	स्व	शत्रु	शत्रु
उदयास्त	उदित	उदित	अस्त	उदित	उदित	उदित	उदित	अस्त	अस्त
वक्री, मार्गी	मा.	मा.	मा.	मा.	मा.	मा.	वक्री	वक्री	वक्री

	१ क्षेत्रबल	२ नवांशबल	३ उदयबल	४ वक्रबल	५ उच्चबल	योग ८८
सूय	०।३।३१	०।१।४१	१।०।०	०।०।०	०।५६।५	२।११।१७
चन्द्र	०।१५।५	०।४३।४६	०।४७।६	०।०।०	०।३६।२०	२।२२।२३
मङ्गल	०।६।७	०।२२।५	०।०।०	०।०।०	०।४३।५४	१।१५ ६
बुध	०।१७।४५	०।४०।२४	०।१६।३०	०।०।०	०।३३।५६	१।५१।३८
गुरु	०।४६।५८	०।७।३५	०।१४।५०	०।०।०	०।४१।१५	१।५३।३८
शुक्र	०।४४।२४	०।३६।३६	०।४६।५	०।०।०	०।४६।५८	२।५७।३
शनि	०।७।२५	०।३।११	०।३६।३६	०।६।३४	०।५२।५	२।१६।४४
राहु	०।७।४०	०।८।५६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२३	१।५६।५६
केतु	०।७।४०	०।८।५६	०।०।०	१।०।०	०।४०।२३	१।५६।५६

		वर्ण	नक्षत्र	राशि	स्वर	तिथि
बंबई स्थान का स्वामी चन्द्र	वर्णादि पञ्चक	व गु L	रोहिणी	वृष ०बु8	ओ	पूर्णा
काल का स्वामीचन्द्र	"	म बु8 ०शR	मघा	सिंह	इ	भद्रा १२ शुक्ल पक्ष
पण्य का स्वामी शनि	"	च ०गुL	रेवती	मीन	ओ	पूर्णा